www.thearyasamaj.org

ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल २०१७

Date of Printing = 05-4-17
प्रकाशन दिनांक= 05-4-17

वर्ष ४६ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९३
विक्रम-संवत् : चैत्र-बैसाख, २०७४
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११८

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- शास्त्रार्थ २
- वेदोपदेश ३
- आर्यसमाज का परम धर्म.... ४
- योगदर्शन में..... ६
- क्या महाभारत..... ९
- स्वामी विवेकानन्द.... १३
- मनुष्यों का धर्म.... १७
- बात सिर्फ मन्दिर..... २०
- निजामुद्दीन औलिया.... २२
- महारानी पद्मिनी.... २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

www.thearyasamaj.org

शास्त्रार्थ

विषय : क्या ईश्वर का अवतार होता है?
प्रधान : श्री मास्टर बोधराज जी
दिनांक : 20, 21 दिसम्बर सन् 1919 (दिन के दो बजे)
शास्थार्थ कर्ता : शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमर सिंह जी 'आर्य पथिक' वर्तमान महात्मा अमर स्वामी जी महाराज एवं
सनातन धर्मियों की ओर से : श्री पं. गोकुल चन्द जी शास्त्री

मार्च २०१७ से आगे

आर्यसमाज में जब शास्त्रार्थों का युग था, तब गैर आर्यसमाजी लोग आर्यसमाज में आते व बड़े चाव से हमारी बात सुनते थे। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे विद्वानों के शास्त्रार्थों में से एक शास्त्रार्थ का प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

-सम्पादक

अतः यह प्रमाण व्यर्थ हुए, आपको यह भी बताना पड़ेगा कि सृष्टि के आरम्भ से अब तक कितने और कौन-कौन अवतार हुए?

यह मेरा प्रश्न नोट करिये और अवतारों की संख्या तथा अवतारों के नाम भी बताने की कृपा करिये जिससे शास्त्रार्थ ठीक मार्ग पर चल सकें और किसी निर्णय पर पहुँचने में सहायता मिल सके राजा का उदाहरण आपने जो दिया वह विषम है, राजा एक देशी और अल्प शक्ति वाला होता है, और परमेश्वर सर्वदेशी तथा अमर शक्तियों से युक्त सदा रहता है, एकदेशी राजा की तरह उसको जल आदि में कूदने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, वह जल आदि में सदा विद्यमान रहता है। वेद में कहा है -

"उतास्मिन् अल्प उदके निलीन :" अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त १६ मन्त्र ३,

वह पानी की प्रत्येक बून्द में भी विद्यमान है।

श्री पं० गोकुल चन्द जी शास्त्री

मैं पूछता हूँ क्या आप कोई काम ऐसे बता सकते हैं, जिन्हें परमेश्वर न कर सके, और क्या कोई कार्य ऐसे भी हैं, जिनका करना ईश्वर के लिए अनुचित हो? गोस्वामी तुलसीदास जी का वचन आपके लिए प्रमाण नहीं है, तो गीता का प्रमाण तो आप मानेंगे ही, लीजिये वेद का प्रमाण भी देता हूं।

प्रजापतिश्चरति् गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भवनानि विश्वाः।।

(यह यजुर्वेद अध्याय ३१ का १९वां मन्त्र है) इसमें स्पष्ट कहा है कि, प्रजापति परमात्मा गर्भ में आता है। और जन्म लेकर बहुत प्रकार से प्रकट होता है। आर्य समाजी पं. जी ने इस प्रश्न पर बहुत बल दिया है कि, भगवान के अवतार कितने और कौन-कौन से हुए हैं, यह बताया जाये। इसके उत्तर में मैं आपको बताता हूँ सुनिये - भगवान के अवतार अनादि काल से होते आये हैं। उनकी गणना कोई नहीं कर सकता है। तो भी मुख्य अवतार हमारे यहाँ २४ माने जाते हैं। उनमें से भी मुख्य दस कहे गये हैं।

चार सतयुग में,तीन त्रेता युग में और दो द्वापर में हुए।

इस प्रकार नौ अवतार हो चुके। एक कलियुग में होता है, सो होना शेष है। जो हो चुके, उनके नाम लिखिये मैं बताता हूँ।

१. वराह (सूकर) २. मत्स्य ३. कच्छप ४. नृसिंह ये चार अवतार तो सतयुग में हुए।

५. वामन, ६. श्री राम जी, ७. श्री परशुराम जी। ये तीन अवतार त्रेता युग के इस प्रकार ये सात अवतार हुए।

और -८. श्री कृष्ण जी।९. श्री बलराम जी।

शेष पृष्ठ २४ पर

www.thearyasamaj.org

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– वह अग्नि (भौतिक) कैसा है। अग्नि विद्युत् रूप है। यह ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य वायु को उत्पन्न करता है। सब मनुष्य उसको जानने का यत्न करें।

सर्पराज्ञीकद्रूः ऋषिः। अग्निः। विद्युत् देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।।
वह अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है।

ओ३म् –अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
व्यख्यन् महिषो दिवम्।। (यजु० ३। ७)

पदार्थः–(अन्तः) ब्रह्माण्डशरीरयोर्मध्ये (चरति) गच्छति। (रोचना) दीप्तिः (अस्य) अग्नेः (प्राणात्) ब्रह्माण्ड-शरीरयोर्मध्ये ऊर्ध्वगमनशीलात् (अपानती) अपानमधो गमनशीलं वायुं निष्पादयन्तीं विद्युत् (वि) विविधार्थे (अख्यत्) ख्यापयति। प्रमलार्थलुडन्तर्गतोव्यर्थश्च (महिषः) स्वगुणैर्महान् (दिवम्) सूर्यलोकम्।।

सपदार्थान्वयः–याऽस्य (अग्नेः) प्राणा ब्रह्माण्ड-शरीरयोर्मध्ये ऊर्ध्वगमनशील (अपानवती) अपानमधोगमनशीलं वायुं निष्पादयन्ती विद्युत् सती (रोचना) दीप्तिर्विद्युच्छरीर-ब्रह्माण्डयोरन्तः ब्रह्माण्ड शरीरयोर्मध्ये (चरति) गच्छति। स (महिषः) स्वगुणैर्महान् अग्निः (दिवम्) सूर्यलोकम् (व्यख्यत्) विख्यापयति विविधं ख्यापयति।।

भाषार्थ–जो (अस्य) इस अग्नि के (प्राणात्) ब्रह्माण्ड और शरीर में ऊर्ध्वगमनशील प्राण में (अपानती) नीचे गमन करने वाली वायु को उत्पन्न करती हुई (रोचना) दीप्तिमय विद्युत है, वह शरीर और ब्रह्माण्ड के (अन्तः) मध्यमें (चरति) गति करती है और वह (महिषः) अपने गुणों से महान् अग्नि (दिवम्) सूर्य लोक को (व्यख्यत्) नाना प्रकार से प्रसिद्ध करती है।

भावार्थः–मानवैयोऽग्निविद्युदाख्या सर्वान्तःस्था कान्तिर्वर्तते सा प्राणापानाभ्यां सह संयुज्य सर्वान् प्राणापानाग्निप्रकाशगत्यादीन् चेष्टाव्यवहारान् प्रसिद्धी करोतीति बोध्यम्।।

भावार्थ–जो अग्नि विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सबके मध्य में कान्ति रूप में विद्यमान है। वह प्राण और अपान के साथ संयुक्त होकर प्राण, अपान अग्नि के प्रकाश के साथ संयुक्त होकर प्राण, अपान, अग्नि के प्रकाश की गति आदि चेष्टा और व्यवहारों को प्रकट करता है। ऐसा सब मनुष्यों को जानना योग्य है।

("दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता–स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)

www.thearyasamaj.org

आर्यसमाज का परम धर्म व मुख्य उद्देश्य

(धर्मपाल आर्य)

आज से १४२ वर्ष पूर्व अर्थात् १० अप्रैल, १८७५ को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। महर्षि दयानन्द का सपना था कि पूरे विश्व में मानवता का, आस्तिकता का, धार्मिकता का, विश्व-बन्धुत्व का, भक्ति का, अहिंसा का प्रचार-प्रसार हो। आर्यसमाज ने पाखण्डों, आडम्बरों, अन्धविश्वासों और समाज में फैली समस्त कुरीतियों के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष किया। महर्षि दयानन्द का सपना था कि सारा विश्व आर्य बने, सारे विश्व में वेद की पावन ऋचाओं का गायन हो, शास्त्रों के ईश्वर सम्बन्धी, धर्म सम्बन्धी, जीवन सम्बन्धी सूत्रों की चर्चा हो। ऋषिवर ने जब देखा कि राष्ट्र में, समाज में आध्यात्मिकता का स्थान मूर्तिपूजा ने ले लिया है और प्राचीन वेदसम्मत वर्ण-व्यवस्था का स्थान जातिवाद ने ले लिया है। न्याय और निष्पक्षता का स्थान अन्याय व भेद-भाव ने ले लिया है, अहिंसा का स्थान हिंसा ने ले लिया है। आस्तिकता का स्थान नास्तिकता ने ले लिया है और सदाचार का स्थान अत्याचार और अनाचार ने ले लिया है तथा शुद्ध शाकाहार का स्थान मांसाहार ने ले लिया है। इतनी विषम परिस्थितियों का ऋषिवर ने गहराई से अध्ययन करने के बाद उनको समूल नष्ट करने के लिए समाज में जन जागरण का अभियान प्रारम्भ कर दिया। महर्षि ने प्रचार के द्वारा और शास्त्रार्थों के द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों पर जमकर प्रहार किया। जिससे समस्त पाखण्डियों की दुनियाँ में हड़कम्प मच गया। शास्त्रार्थ समर में ऋषिवर से मुँह की खाने के बाद उन्होंने (पाखण्डियों ने) ऋषि के विरुद्ध तरह-तरह के षड़यन्त्र रचने प्रारम्भ कर दिये। राष्ट्र निर्माण के अपने पावन अभियान को और दृढ़ता के साथ बढ़ाने के लिए, वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए तीव्र गति से वेदों के प्रचार प्रसार के लिए, कुरीतियों को जड़ से खत्म करने के लिए और स्वतन्त्रता प्राप्ति के अभियान को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए ऋषिवर ने मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। आर्य अर्थात् श्रेष्ठ और आर्यसमाज अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का समाज। श्रेष्ठ विश्व का ऋषि का सपना था। अपने सपने को साकार करने के लिए आर्यसमाज के माध्यम से ऋषिवर ने अपने प्रयासों को गम्भीरता के साथ और तेज कर दिया। आर्य शब्द को लेकर और आर्यसमाज को लेकर अवैदिक मतावलम्बियों ने समाज को भ्रमित करने का बड़ा प्रयास किया। कभी कहा जाता कि आर्य जाति बाहर से आई थी, कभी कहते थे कि आर्य हमलावर थे और कभी कहते कि आर्यसमाज देवी देवताओं को नहीं मानता, आर्यसमाज भगवान् को नहीं मानता तथा आर्यसमाज राम, कृष्ण को नहीं मानता। उनके अनुसार आर्य का अर्थ नास्तिक और नास्तिक के समाज को आर्यसमाज कहा जाता था। आर्यसमाज ने न केवल अपने विषय में विरोधियों द्वारा फैलाई गई भ्रान्त धारणाओं का निराकरण किया, अपितु महापुरुषों के विषय में, ईश्वर के विषय में, धर्म के विषय में, भक्ति के विषय में तथा वैदिक संस्कृति के विषय में फैली अज्ञानता से समाज व राष्ट्र को अवगत कराया। महात्मा विदुर आर्य शब्द की बड़ी सटीक परिभाषा देते हुए विदुर नीति में कहते हैं-

"न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तम्।
न दर्पमारोहति नास्तमेति।।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यम्।
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः।।"

अर्थात् जो वैरभाव को नहीं बढ़ता, जो अहंकार को प्राप्त नहीं होता, जो अपने अस्तित्व को नहीं खोता, जो दुरवस्था को प्राप्त होने पर भी अधर्म के पथ पर अग्रसर नहीं होता और परोपकारप्रिय है, उसको ही श्रेष्ठजन आर्य कहते हैं और उपरोक्त गुणों से युक्त व्यक्तित्व के धनी पुरुषों के समूह को ही आर्यसमाज कहते हैं। महर्षि द्वारा निर्धारित आर्यसमाज के लिए उद्देश्य और धर्म पर यदि गम्भीरता और निष्पक्षता से देखें, तो वो उद्देश्य और धर्म केवल आर्यसमाज का ही उद्देश्य व धर्म नहीं, अपितु प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य व धर्म है, जिसमें महर्षि कहते हैं - "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना" और धर्म को परिभाषित करते

www.thearyasamaj.org

हुए आचार्यवर लिखते हैं- "वेद का पढ़ना पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है।" वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना किसलिए सब आर्यों का परम धर्म है? इसलिए परम धर्म है क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। आर्यसमाज ने अपने परम धर्म के प्रचार-प्रसार में और अपने शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नतिरूपी संसार के उपकार के उद्देश्य को पाने के लिए भागीरथ प्रयास प्रारम्भ कर दिए। अपनी स्थापना के उद्देश्य को सार्थक करने के लिए आर्यसमाज ने जो प्रयास किये, उनसे न केवल देश के, अपितु विदेशी इतिहासकार और साहित्यकार भी दंग रह गये। इङ्गलैण्ड के एल.एस.एस.ओ. माले आर्यसमाज के विषय में लिखते हैं- "आर्यसमाज एक ऐसा लोकप्रिय धर्मान्दोलन है, जो न केवल प्रवुद्ध लोगों को आकर्पित करता है, अपितु उस विचार के कारण सर्वसामान्य को भी आकर्षित करता है।" अमरीकी विद्वान् चार्ल्स एच. हैमसेथ लिखते हैं- "उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ईसाइयों को छोड़कर आर्यसमाज ने भारत की सभी धार्मिक संस्थाओं के सार्वजनिक कार्यक्रमों को पूरा करने में उनका नेतृत्व किया। आर्यसमाज के विषय में राष्ट्रीय कवि श्री रामधारी सिंह ने अपने ग्रन्थ संस्कृति के चार अध्याय में लिखा है- "आर्यसमाज हिन्दू धर्म की खड्गधारी बाँह (भुजा) है"। चाहे स्त्री-शूद्रों के वेद पढ़ने की अधिकार की बात हो, चाहे दलितोद्धार का कार्य हो, चाहे पाखण्ड व आडम्बरों के विरुद्ध शास्त्रार्थ हो, चाहे स्वतन्त्रता- संग्राम में संघर्ष की बात हो, चाहे गोरक्षा की बात हो, चाहे अन्ध-विश्वासों को मिटाने की चुनौती हो तथा चाहे संस्कृति और संस्कृत की रक्षा का प्रश्न हो। उपरोक्त सभी प्रकरणों पर आर्यसमाज ने समाज को सही मार्गदर्शन देने का ऐतिहासिक योगदान दिया। सब सत्य विद्याओं का पुस्तक वेद को पढ़ने-पढ़ाने का और सुनने-सुनाने का कार्य आर्यसमाज ने विना किसी भेद-भाव के करते हुए अपने परम धर्म का पालन किया तथा संसार के उपकार का उद्देश्य अर्थात् शारीरिक, सामाजिक व आत्मिक उन्नति का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए असंख्यों बलिदान दिये। महर्पि जी द्वारा निर्धारित किए गये परम धर्म को प्राप्त करना ही आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य (लक्ष्य) था, है और रहेगा तथा महर्पि जी द्वारा निर्धारित मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करना आर्य समाज का परम धर्म था, है और आगे भी रहेगा। राष्ट्र के आध्यात्मिक, चारित्रिक, नैतिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उत्थान आर्यसमाज का मुख्य कार्य- क्षेत्र रहा है। आर्यसमाज के परम धर्म का व मुख्य उद्देश्य का मूल मन्त्र है "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अर्थात् सारे विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाओ। समाज व राष्ट्र के सर्वाङ्गीण उत्थान में आर्यसमाज के अविस्मरणीय योगदान को बड़े आदर के साथ याद करते हुए हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी लिखते हैं- "देश में महिलाओं, पतितों तथा जाति-पाति के भेदभाव को मिटाने के लिए महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज से बढ़कर इन नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया। आज जो जागरण भारत में दीख पड़ता है, उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्यसमाज को है।" एक अन्य विदेशी दार्शनिक ने आर्यसमाज के विपय में अपनी धारणा कुछ इस प्रकार व्यक्त की- "मुझे भारत वर्ष में आर्य- समाज के रूप में एक ऐसी अग्नि दिखाई दे रही है, जो भविष्य में प्रचण्ड रूप धारण कर ऐशिया के समस्त भागों में फैलकर एक दिन विश्व से समस्त अंधविश्वासों को मिटाकर सत्यता का, मानवता का और सांस्कृतिक उत्थान का एक बड़ा कारण बनेगी।" धार्मिक परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक परिवर्तन आज की आवश्यकता है। आर्यसमाज के स्थापना दिवस पर हम सब को यह दृढ़ संकल्प लेने की आवश्यकता है कि हम सब निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर तथा एकता के सूत्र में वंधकर समाज व राष्ट्र की उपरोक्त आवश्यकता को पूर्ण करें। अन्त में संस्कृत साहित्य के महान् कवि आचार्य मेधाव्रत जी की निम्न पङ्क्तियों के द्वारा भगवान् से प्रार्थना करता हुआ अपने लेख को विराम देना चाहूँगा -

"संसारेऽस्मिन् विलसतु पुनर्भव्यवेदांशुमाली।
संस्काराणां भवतु महतां पावनानां प्रचारः।।
वेदोपदेशामृतजलधरा भक्तिधारां प्रवर्धन्।
लोकस्वान्ते सकलसुखदां स्यन्दतां स्नेहधाराम्।"

अर्थात् हे प्रभो! इस संसार में वेदज्ञान का सूर्य आलोकित कर दे, वैदिक संस्कारों का अधिक से अधिक विश्व में प्रचार-प्रसार हो और वेदोपेदेश की बहती हुई अमृत की धारा संसार के प्राणिमात्र को सुख देने वाली हो।

❑❑

www.thearyasamaj.org

योग दर्शन में जन्म-मृत्यु का चक्र

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.- 09845058310)

भारतीय षड्दर्शनों में से एक, योगदर्शन से आप सभी परिचित होंगे। और जन्म-मृत्यु के शाश्वत् चक्र से कौन भारतीय परिचित नहीं है, जो चक्र हमको बचपन में ही सिखा दिया जाता है। परन्तु सम्भव है कि आपने योगदर्शन में इस चक्र का स्वरूप दिया हुआ है, इस विषय में न सुना हो। सो, इस लेख में मैं उसी को दर्शाती हूँ।

पतञ्जलि मुनि ने अपने शास्त्र में जन्म को 'संयोग' संज्ञा भी दी है, क्योंकि जन्म में जीवात्मा और प्रकृति का संयोग = मिलन होता है। पतञ्जलि ने जीवात्मा और प्रकृति को भी अपने गुणानुसार संज्ञाएं दी हैं - क्रमशः द्रष्टा और दृश्य। संयोग को वे इस प्रकार परिभाषित करते हैं-

हेयं दुःखमनागतम्।। २/१६।।

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगः हेयहेतुः।। २/१७।।

अर्थात् जो दुःख जीव को भविष्य में झेलना है, वह हेय है, अर्थात् दूर करने योग्य है। उस हेय का कारण द्रष्टा और दृश्य का संयोग है। अर्थात् जन्म लेना ही सब कष्टों की जड़ है; जिसका जन्म हुआ है, वह दुःखों से भी संयुक्त हो ही जाता है।

किसी भी वस्तु का पार पाने के लिए- उसका निवारण अथवा उसकी प्राप्ति के लिए- उसका कारण जानना आवश्यक है। इसीलिए भारतीय दर्शनों में कार्य-कारण सम्बन्ध को इतना महत्त्व दिया जाता है। सो, पतञ्जलि संयोग का हेतु = कारण बताते हैं-

तस्य हेतुरविद्या। २/२४।।

यहाँ 'संयोगः' की अनुवृत्ति है। इसलिए अर्थ बना- संयोग का कारण अविद्या है। यहाँ 'अविद्या' से **"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिर्-अविद्या (२/५)"**

अर्थात् अनित्य में नित्य, अशुचि में शुचि, दुःख में सुख, अनात्मा में आत्मा जानना, केवल यह लक्षित नहीं है, अपितु पाँचों क्लेश - अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (२/३) - सभी उपलक्षित हैं, क्योंकि पतञ्जलि ने स्वयं कहा था-

"अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां .... (२/४)"

अर्थात् अविद्या शेष चार क्लेशों का उत्पत्तिस्थान है, अथवा उनके मूल में है। संस्कृत में इस प्रकार उपलक्षण लाघव के लिए करना सामान्य शैली है। इससे सूत्रार्थ बना- संयोग का कारण क्लेश है।

अब संयोग होने पर, शरीर से आच्छादित होने पर, जीव कर्म करता है। और क्लेश उसमें उपस्थित होने के कारण, ये कर्म पुण्य- वा अपुण्य-आत्मक होते हैं। पतञ्जलि ने इसको ऐसे बताया है-

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।। २/१२।।

जिन कर्मों के मूल में क्लेश हैं, अर्थात् क्लेश से प्रेरित होकर जो कर्म किए जाते हैं, वे (पुण्य अथवा अपुण्यरूपी) कर्माशय उत्पन्न करते हैं, जो कि इस जन्म में अथवा भावी जन्मों में सहने पड़ते हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।। २/१३।।

इस क्लेश-मूल के रहते, उन कर्माशयों के विपाक होते हैं- जाति (योनि जिसमें प्राणी उत्पन्न हो), आयु (जीवन की दीर्घता) और भोग।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।। २/१४।।

वे जाति, आयु और भोग, कर्माशय के पुण्यात्मक होने पर पर आनन्द प्रदान करते हैं, और अपुण्यात्मक होने पर दुःख देते हैं। यहाँ अर्थापत्ति से हम जान सकते हैं कि क्लेशरहित कर्मों का कोई कर्माशय नहीं बनता। ऐसा होने से, उनके पुण्यात्मक या अपुण्यात्मक होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तब वे कोई फल भी नहीं देते- न तो सुख, न ही दुःख। इन्हीं कर्मों को अन्य रूप से 'निष्काम कर्म' कहते हैं, जिनको क्लेशों पर विजय पाने

www.thearyasamaj.org

वाले योगी ही करते हैं; साधारण मनुष्यों के सभी कर्म क्लेशयुक्त और फल देने वाले होते हैं। (कभी-कभी यह समझा जाता है कि परोपकार आदि कुछ कर्म निष्काम अथवा निःस्वार्थ कर्म हैं, परन्तु वे पुण्यात्मक इसीलिए होते हैं क्योंकि वे क्लेश से युक्त होते हैं।)

अब यहाँ एक अनकही बात है, जिसको कि मननशील व्यक्ति विचार करके पता कर सकता है। २/१४ में जो ह्लाद और परिताप कहे गए हैं, वे सुख और दुःख के पर्यायवाची ही हैं, उनसे कुछ भिन्न वस्तु नहीं हैं। ये भौतिक सुख-दुःख हैं, जो कि अवश्य ही मोक्ष-सुख से भिन्न हैं। अर्थात् इस सूत्र में भौतिक सुख-दुःख की ही चर्चा हो रही है। इन सुख-दुःख के विषय में पतञ्जलि कहते हैं-

सुखानुशयी रागः।। २/७।।

दुःखानुशयी द्वेषः।। २/८।।

अर्थात् सुख से राग-क्लेश उत्पन्न होता है और दुःख से द्वेष-क्लेश उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं है कि इसमें कुछ भी आश्चर्य है, क्योंकि सुखात्मक अनुभव हम पुनः-पुनः दोहराना चाहते हैं और दुःखात्मक अनुभवों से कतराते हैं। यह 'चाह' ही क्लेश है, जो कि हमें उनको पूर्ण करने के लिए कर्मों में प्रेरित करती है। इस प्रकार कर्मों के फल हमारे पुराने क्लेशों को और सुदृढ़ करते हैं और नए क्लेशों को उत्पन्न करते हैं। पुरुषार्थ करने पर, कुछ क्लेश नष्ट भी होते होंगे, परन्तु उनके लिए पुरुषार्थ आवश्यक है।

ये ही क्लेश हमें पुनः जीवन में बाँध देते हैं और पुण्यापुण्य कर्माशयों को भोगने के लिए संयोग में डाल देते हैं (२/२४), जहाँ हम पुनः नए क्लेश इकट्ठा करने लगते हैं। इस प्रकार यह पूरा जन्म-चक्र बन जाता है। प्रायः यह माना जाता है कि कर्मों के कारण हम जन्म लेते हैं। परन्तु उपर्युक्त से ज्ञात होता है कि यह पूर्णतया सही नहीं है। पुण्यापुण्यात्मक कर्मों के कारण हमारा सुख-दुःख तो निर्धारित होता है, यहाँ तक कि हमारी योनि और हमारी आयु भी निर्धारित होती है, परन्तु जन्म और मोक्ष का निर्धारण नहीं होता। वह तो हमारे निहित अविद्या पर निर्भर है, जो कि हमें अपने शरीर से आत्मीयता प्रदान करती है। वस्तुतः तो इस अविद्या क्लेश को परमात्मा ही उत्पन्न करते हैं, जब हमें शरीर से संयुक्त करते हैं, परन्तु इस विषय को पतञ्जलि ने नहीं छेड़ा है, और न ही किसी अन्य दर्शन-शास्त्र ने, इसलिए हम भी इसे यहीं छोड़ देते हैं...।

अब जब हमें जीवन-चक्र का कारण मिल गया, तो उससे छूटने का उपाय भी स्वयमेव उपस्थित हो जाता है- क्लेशों का, और मुख्य रूप से अविद्या का, नाश! योगदर्शन पूर्णतया इसी विषय को समर्पित है, और सामान्यजन से लेकर योगी तक के लिए उसमें जीवन-परिवर्तन के लिए उपदेश है। मुख्य रूप से, पतञ्जलि ने मोक्ष को 'हान' या 'छुटकारा' संज्ञा देते हुए कहा है-

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः।। २/२३।।

संयोग के द्वारा स्व = प्रकृति और उसके (शरीर आदि कुछ अंश में) स्वामी जीवात्मा की शक्तियों के स्वरूप की उपलब्धि = ज्ञान होता है। यह संयोग का मुख्य प्रयोजन है। पुनः-

तस्य हेतुरविद्या।। २/२४।।

उस संयोग का हेतु अविद्या आदि क्लेश हैं।

तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।। २/२५।।

अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव होना हान है, जो कि द्रष्टा जीवात्मा की कैवल्य प्राप्ति है। कैवल्य अर्थात् 'केवलता' इसलिए कि उस अवस्था में जीव, प्रकृति से पूर्णतया मुक्त होकर, अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है-

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।। १/३।।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।। २/२६।।

हान का उपाय है- अडिग, दृढ़ विवेकख्याति की प्राप्ति। विवेकख्याति का अर्थ है- आत्मा और प्रकृति में विवेक करना- शरीर कहाँ अन्त होता है, आत्मा कहाँ प्रारम्भ होती है, उससे जानना; मैं क्या हूँ- उसे जानना। इसे प्राप्त करने के लिए पतञ्जलि मुनि ने आठ अंग बताए हैं, जिनसे अधिकतर सभी परिचित हैं। आरम्भ

www.thearyasamaj.org

में यह विवेक समाधिस्थ अवस्था में ही प्राप्त होता है, परन्तु अभ्यास के साथ, वह विवेक प्रत्येक क्षण बना रहने लगता है, चाहे आत्मा समाधि में हो या उसके बाहर। तब उसकी विवेकख्याति अविप्लवा हो जाती है।

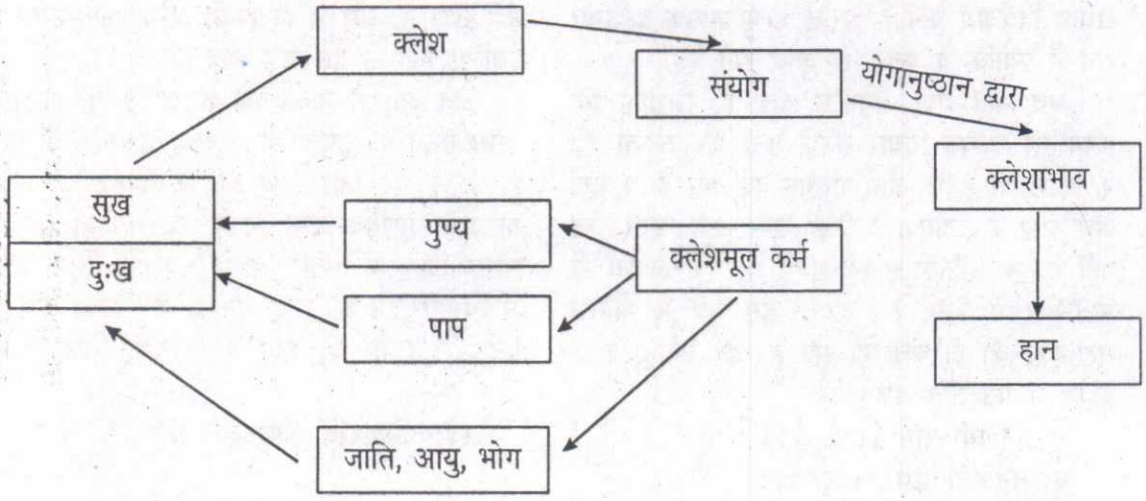

चित्र : जन्मचक्र और उससे मुक्ति

ऊपर दिए चित्र में यह चक्र और उससे मुक्ति दर्शायी गई है।

क्लेश ही जन्म का कारण है, इसे सभी दर्शन-शास्त्र प्रमाणित करते हैं। सांख्य कहता है-

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके।। ३/६३।।

अर्थात् शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध होने पर, प्रधान(मूल प्रकृति) उस आत्मा के लिए सृजन करने से निवृत्त हो जाता है, जिस प्रकार पाचक खाना बना लेने पर पाकशाला से निवृत्त हो जाता है। प्रकृति का अन्तिम प्रयोजन- आत्मा को अपवर्ग (मोक्ष) तक पहुँचाना- सिद्ध हो जाने पर, उसको जीव के लिए भोगों का सृजन करने की आवश्यकता नहीं रहती। न्याय कहता है-

न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य।।
४/१/६४।।

जिस आत्मा के क्लेश नष्ट हो जाते हैं, वह पुनः प्रकृति से संयुक्त होने (जन्म लेने) के लिए प्रवृत्त नहीं होता।

ऊपर के विवेचन से हमें ज्ञात होता है कि किस प्रकार जन्म-चक्र प्रवर्तित होता है, और किस प्रकार उससे मुक्ति पानी होती है। जहाँ एक ओर ये तथ्य ऋषियों के अन्तःप्रत्यक्ष से सिद्ध होते हैं, वहाँ दूसरी ओर इनका कुछ अंश कार्य-कारण सम्बन्ध जानने से भी ज्ञात होता है। जब हम जीवन का कारण समझ लेते हैं, तब ही मोक्ष का मार्ग स्पष्ट होता है। प्रकृति पर इतना गहन विचार भी इसीलिए पाया जाता है कि हम अपने गुण-कर्म-स्वभावों को प्रकृति से भिन्न जान सकें। तभी तो हम अपने को खोज सकते हैं। मात्र भक्ति से यह कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता। और इस प्रकार के विवेचन से ही इस विषय पर पुराणों आदि मिथ्या ग्रन्थों का मिथ्यात्व स्पष्ट जाना जा सकता है। इसलिए प्रायः सभी दर्शन-ग्रन्थ कार्य-कारण समबन्ध विषय पर जोर देते हैं और इसी के अनुसार अपने सिद्धान्तों को सिद्ध करते हैं। हमें भी अपने अन्दर यह क्षमता उत्पन्न करनी होगी, क्योंकि आजकल कई 'कथित महात्मा' परस्पर विरोधी बातें करते पाए जाते हैं और सच व झूठ का निर्णय करना प्रायः कठिन हो जाता है।

❑❑

www.thearyasamaj.org

क्या महाभारत में मन्त्र हैं? (3)

(राजेशार्य आट्टा, मो- 09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! यद्यपि भगवद्गीता (भीष्म पर्व, अध्याय २५-४२) में आत्मा-परमात्मा, यज्ञ-योग, दान, तप, श्रद्धा आदि से सम्बन्धित बहुत अच्छी चर्चा है, तथापि युद्धक्षेत्र में ऐसा उपदेश अप्रासंगिक लगता है। क्योंकि अच्छी बात भी उचित अवसर पर ही कही जाती है। इसीलिए सम्पूर्ण गीता को प्रक्षिप्त सिद्ध करते हुए 'दयानन्द सन्देश' मई २०१६ में लिखा जा चुका है। यद्यपि वैदिक विद्वानों ने बड़ी कुशलता से गीता की व्याख्या करने का प्रयास किया है, तथापि गीता के कई स्थल हैं, जो श्रीकृष्ण को परमात्मा सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। यह बात ठीक है कि अपने चरित्र, बल, पराक्रम व नीति के कारण श्री कृष्ण अपने समय में बहुत ही आदरणीय थे, पर परमात्मा नहीं। बाद में अवतारवादी परम्परा के लोगों ने उन्हें परमात्मा (या परमात्मा का अवतार) सिद्ध करने के लिए महाभारत में बहुत कुछ जोड़ दिया। प्रक्षिप्त गीता में भी उसी क्रम से प्रक्षेप हुआ। तभी तो यज्ञ व योग (ओ३म् नाम वाले निराकार परमात्मा के ध्यान की विधि) के साथ कृष्ण की (मूर्ति की) पूजा (पत्रं पुष्पं फलं तोयं) का विधान भी मिलता है।

ऐसा ही प्रक्षेप सभापर्व अध्याय ३८ में हुआ है। श्रीकृष्ण की अग्रपूजा से क्रोधित हुआ शिशुपाल जब सभा में युधिष्ठिर, कृष्ण व भीष्म आदि के विरुद्ध विष-वमन कर रहा था, तो भीष्म के मुख से ही अवतारों (विष्णु, नरसिंह, दत्तात्रेय, वामन, परशुराम, राम व कृष्ण आदि) का गुणगान करवा दिया। कृष्ण अवतार की लीलाओं (चमत्कारों) का विस्तार से वर्णन हुआ है। यह सब सुनकर भी शिशुपाल श्रीकृष्ण की दैवीय शक्ति से जरा भी प्रभावित नहीं हुआ। भैंस के आगे बीन बजाने के लिए महाभारत के इस अध्याय के ३३ श्लोकों में दाक्षिणात्य के अवतारपरक ७२८-१/२ श्लोक और मिला दिये गये अर्थात् एक ही अध्याय में १८ अध्यायों (७०० श्लोकों) की गीता से भी अधिक सामग्री जुड़ गई।

श्रीकृष्ण आदि आदरणीयों के विरुद्ध बोलता हुआ शिशुपाल यह कहकर सभा से जाने लगा-

दृष्टो युधिष्ठिरो राजा दृष्टो भीष्मश्च यादृशः।
वासुदेवोऽप्ययं दृष्टः सर्वमेतद् यथातथम्।।

(सभा० ३७-३०)

"आज मैंने राजा युधिष्ठिर को देख लिया, भीष्म भी जैसे हैं, उनको भी देख लिया और वासुदेव कृष्ण का भी वास्तविक रूप क्या है, यह भी देख लिया। वास्तव में ये सब ऐसे ही हैं।"

इसका उत्तर भीष्म ने अगले (३८वें) अध्याय के ६-२२ व बाद के ३०-३३ श्लोकों में दे दिया है। बीच के (७+७२८-१/२) श्लोक अप्रासंगिक हैं। इन्हीं में संक्षिप्त रामकथा भी सुनाई गई है। यदि रामकथा यहाँ सुनाई गई होती, तो जयद्रथ द्वारा द्रौपदी के अपहरण के प्रसंग में युधिष्ठिर यह न कहते- "भगवन् (ऋषि मार्कण्डेय जी)! आपने हमारे समान मन्द भाग्य पुरुष (राज्य विहीन, निर्वासित व वन में पत्नी का अपहरण होना) इस जगत् में कोई और भी देखा या सुना है?" मार्कण्डेय जी बोले- "राजन्! श्रीरामचन्द्र जी को भी वनवास और स्त्री वियोग का महान् कष्ट भोगना पड़ा है।" युधिष्ठिर ने कहा- "मुनिवर! मैं पुण्यकर्मा श्रीरामचन्द्र जी का चरित्र कुछ विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ।" इस पर मार्कण्डेय जी ने रामायण की कथा (वनपर्व २७४-२९२ वें अध्याय) युधिष्ठिर को सुनाई। यदि भीष्म द्वारा कही हुई रामकथा को युधिष्ठिर मोहवश भूल गये होते, तो राम का नाम आते ही उन्हें याद आ जाती, पर ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि रामकथा भीष्म द्वारा कही ही नहीं गई थी। यह सब तो अवतारवाद को सिद्ध करने के लिए जोड़ा गया है। हनुमान भीम संवाद (वन.१४७-१५१) भी ऐसा ही है।

हाँ, महाभारत में वर्णित इन तीनों रामकथाओं से

www.thearyasamaj.org

यह बात तो सिद्ध हो रही है कि महाभारत के इस प्रक्षेप काल तक वाल्मीकि रामायण में उत्तरकाण्ड नहीं जोड़ा गया था। क्योंकि तीनों ही कथाओं की समाप्ति राम के राजतिलक के साथ होती है। आर्य राम के इतिहास को भक्ति की उमंग में आकाश में उड़ाने वाले तथाकथित हिन्दुओं, भारत के तथाकथित कम्युनिस्टों व डॉ० अम्बेडकर के नाम पर राजनीति करने वाले तथाकथित दलित नेताओं को पता होना चाहिए कि सीता-परित्याग व शम्बूक वध आदि जिन तथाकथित घटनाओं के कारण राम को नारी-विरोधी व शूद्र-विरोधी प्रचारित किया जा रहा है, वे उत्तरकाण्ड की हैं और उत्तरकाण्ड सम्भवतः भवभूति के नाटक 'उत्तररामचरितम्' के आधार पर रामायण में जुड़ा है। यह किसी भी प्रकार महर्षि वाल्मीकि की रचना नहीं है।

यह तो सम्भव है कि श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध को टालने के लिए (शान्ति दूत बनकर) दुर्योधन पर दबाव डाला हो और उसकी चाण्डाल चौकड़ी के षड्यंत्र को विफल करने के लिए उन्हें शारीरिक शक्ति का भी प्रदर्शन करना पड़ा हो, पर उद्योग पर्व, १३१वें अध्याय में वर्णित विश्वरूप (चतुर्भुज विष्णु रूप) का दिखाया जाना सम्भव नहीं लगता। क्योंकि जिस (दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, शकुनि आदि) चाण्डाल चौकड़ी को प्रभावित करने (डराने) के लिए यह रूप दिखाया गया, उसकी तो आँखें बन्द हो गयीं और जिसे भीष्म, द्रोण, विदुर, संजय व ऋषियों के साथ अंधे धृतराष्ट्र ने भी देखा हो, उसके विषय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को (भीष्म पर्व, अध्याय ३५) यह क्यों कहा?

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं,
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं,
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।। ४७।।

'हे अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय सबका आदि और सीमारहित विराट रूप तुझको दिखलाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसी ने पहले नहीं दखा था।' वैसे भी जिस प्रयोजन (युद्ध से निवृत्त होकर दुर्योधन पाण्डवों का राज्य दे दे) के लिए यह विश्वरूप दिखाया गया, वह तो सिद्ध नहीं हुआ। क्या केवल कृष्ण को दैवी-शक्ति (परमात्मा) सिद्ध करने के लिए ही यह प्रसंग जोड़ा गया है? ऐसा ही प्रसंग सभापर्व, अध्याय ६८ में मिलता है कि द्यूतसभा में जब दुःशासन द्रौपदी को अपमानित करने के लिए उसका वस्त्र उतार रहा था, तो द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को पुकारा। उस पुकार को सुनकर श्रीकृष्ण ने अदृश्य रूप से वहाँ उपस्थित होकर द्रौपदी का वस्त्र बढ़ाया। यदि वास्तव में कृष्ण वहाँ उपस्थित होते, तो उस अत्याचार को देखकर यह जादूगरी न दिखाते। सीधे अपना सुदर्शनचक्र चलाते और दुःशासन, दुर्योधन आदि की गर्दन उड़ा देते। पाण्डवों के वन जाने के बाद कृष्ण उनसे मिलने गये, तो पाण्डवों का दुःख-दर्द सुनकर कहा था- कि राजन्! यदि मैं उस समय द्वारिका में उसके आसपास होता, तो आप इस महान् संकट में न पड़ते। यदि मुझे जुए की सूचना मिल जाती, तो मैं कौरवों के न बुलाने पर भी द्यूतस्थान पर अवश्य पहुँच जाता और जुए के दोष बताकर उन्हें रोकता। वे नहीं मानते तो उनको मार डालता। (वनपर्व १३-१,२,१३)

उसी समय द्रौपदी कृष्ण के पास दुःशासन द्वारा किये गये अपने अपमान की कथा सुनाकर क्रोध और शोक से भरी खूब रोयी और यह भी कहा कि मेरे बलवान सहायक होते हुए भी किसी ने मेरी सहायता नहीं की, तुम (कृष्ण) ने भी नहीं की। इसलिए मेरा पति, पुत्र, भाई, पिता व कृष्ण आदि कोई नहीं है-

नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा न च बान्धवाः।
न भ्रातरो न च पिता नैव त्वं मधुसूदन।।
(वनपर्व १२-१२५)

यहाँ सहायता न करने के कारण कृष्ण को उलाहना तो दिया है, पर तथाकथित सहायता (वस्त्र बढ़ाना) के लिए धन्यवाद नहीं दिया। उलाहना देकर कृष्ण पर अपनी रक्षा का विशेष भार डालते हुए द्रौपदी ने कहा-

चतुर्भिः कारणैः कृष्ण त्वया रक्ष्यास्मि नित्यशः।
सम्बन्धाद् गौरवात् सख्यात् प्रभुत्वेनैव केशव।।
(वनपर्व१२-१२७)

"हे कृष्ण! चार कारणों से तुम्हें मेरी रक्षा करनी

www.thearyasamaj.org

चाहिए। एक तो तुम मेरे सम्बन्धी हो, मैं गौरवशालिनी हूँ, तुम्हारी सखी हूँ और तुम मेरी रक्षा करने में समर्थ हो।" कृष्ण ने भी भविष्य में सहायता का वचन देते हुए कहा-

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येवं येषां क्रुद्धसि भाविनि। (१२८)
यत् समर्थं पाण्डवानां तत् करिष्यामि मा शुच।।
(१२९)

"भाविनी! तुम जिन पर क्रुद्ध हो, उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार रोयेंगी। पाण्डवों के हित के लिए जो कुछ भी सम्भव है, वह करूँगा। शोक मत करो।" इससे तो यही लगता है कि चीर बढ़ाने वाला प्रसंग श्री कृष्ण को परमात्मा बनाने के लिए जोड़ा गया है। इसी उद्देश्य को लेकर वनपर्व के उपरोक्त अध्यायों में भी अप्रासंगिक वर्णन मिलता है। एक दृष्टि उस पर भी डालते हैं-

जब यादव, पाञ्चाल आदि वीर पाण्डवों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने व कौरवों द्वारा किये गये अन्याय का प्रतिकार करने का आश्वासन देने के लिए वन में पाण्डवों के पास पहुँचे, तो कृष्ण ने कहा-

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः।
दुःशासन चतुर्थानां भूमिः पास्यति शोणितम्।।
(वनपर्व १२-५)

"राजाओ! जान पड़ता है, यह पृथ्वी दुर्योधन, कर्ण, दुरात्मा शकुनि और चौथे दुःशासन इन सबके रक्त का पान करेगी।" यह सुनकर सभी वीर रोष से भर गये। पर तत्काल अर्जुन ने सबको शान्त कर श्री कृष्ण के पूर्वजन्मों के कृत्यों का कीर्तन करना शुरू कर दिया। कहीं उन्हें सैकड़ों वर्ष तक कठोर तप करने वाला नारायण ऋषि कहा, तो कहीं समस्त सृष्टि, शिव, ब्रह्मा आदि का भी उत्पादक विष्णु कहकर स्तुति गान किया (१०-४३)। अर्जुन के चुप होते ही श्री कृष्ण ने कहा-

ममैव त्वं तवैवाहं ये मदीयास्तवैव ते।
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु।।
(४५)

"पार्थ! तुम मेरे ही हो, मैं तुम्हारा ही हूँ। जो मेरे हैं, वे तुम्हारे ही हैं। जो तुमसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी रखता है। जो तुम्हारे अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है।" श्रीकृष्ण द्वारा कहे गये उपरोक्त श्लोकों (१२-५,४५) के बीच के श्लोक अप्रासंगिक हैं व प्रक्षिप्त हैं।

इसके बाद द्रौपदी कौरवों द्वारा अपमानित होने के कारण कुपित होकर श्रीकृष्ण के सामने उपस्थित हुई (४६), पर वह आते ही श्रीकृष्ण का परमात्मा के रूप में कीर्तन करने लगी (५०-६०)। इसके बाद बोली-

कथं नु भार्या पार्थानां तव कृष्ण सखी विभो।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी सभां कृष्येत मादृशी।।
(६१)

"कृष्ण! मेरे जैसी स्त्री जो कुन्तीपुत्रों की पत्नी, आपकी सखी और धृष्टद्युम्न जैसे वीर की बहिन हो, क्या किसी तरह सभा में घसीटकर लायी जा सकती है?" प्रबुद्ध पाठक! सोचिये, क्या बीच के श्लोक अप्रासंगिक नहीं हैं?

यद्यपि श्रीकृष्ण पाण्डवों के प्रति किये गये कौरवों के अन्याय को मिटाने के लिए युद्ध को आवश्यक मानते थे, पर वे सम्पूर्ण राष्ट्र को युद्ध की आग में झोंकने से बचना चाहते थे। इसलिए हठी व धूर्त दुर्योधन की सभा में शान्तिदूत बनकर गये। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा-

उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम्।। ७९
शमं तत्र लभेयं चेद् युष्मदर्थमहापयन्।
पुण्यं मे सुभहद् राजश्चरितं स्यान्महाफलम्।।८०
मोचयेयं मृत्युपाशात् संरब्धान् कुरुसृंजयान्।
पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च सर्वां च पृथिवीमिमाम्।।
८१

"राजन्! मैं दोनों पक्षों के हित के लिए कौरवों की सभा में जाऊँगा। वहाँ जाकर आपके लाभ में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाते हुए यदि मैं दोनों पक्षों में सन्धि करा सका, तो मैं समझूँगा कि मेरे द्वारा यह महान् फलदायक एवं बहुत बड़ा पुण्यकर्म सम्पन्न हो गया। ऐसा होने पर एक दूसरे के प्रति रोष से भरे हुए इन कौरवों, सृंजयों, पाण्डवों और धृतराष्ट्रपुत्रों को तथा इस सारी पृथ्वी को भी मानो मैं मौत के फंदे से छुड़ा

www.thearyasamaj.org

लूँगा।" (उद्योग,७२)

जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम्।
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम्।।
(उ०७२-८५)

"महाराज! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन कितना पापाचारी है, यह मैं जानता हूँ, तथापि वहाँ जाकर संधि के लिए प्रयत्न करने पर हम सब लोग सम्पूर्ण जगत् के राजाओं की दृष्टि में निन्दा के पात्र न होंगे।" विदुर के पास जाकर भी यही कहा-

न मां ब्रूयुर धर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा।
शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान कुरु पाण्डवान्।।

"मैं तो यही चाहता हूँ कि संसार के पापी, मूढ़ एवं शत्रु-भाव रखने वाले लोग मुझे यह न कहें कि सामर्थ्यवान् होते हुए भी कृष्ण ने क्रोधयुक्त कौरवों और पाण्डवों को युद्ध करने से नहीं रोका।"
(उद्योग०९३-१६)

ये थे श्रीकृष्ण के उच्च भाव। पर प्रश्न उपस्थित होता है कि शांति प्रस्ताव ले जाने (उद्योग०अ०८६) से पूर्व ही श्रीकृष्ण ने दुर्योधन और अर्जुन में अपना और अपनी सेना का विभाजन (उद्योग०अ०७) कैसे कर दिया? क्या भीष्म, द्रोण, कृप व शल्य की तरह कृष्ण भी दुर्योधन के किसी दबाव में थे, जो उसको सहायता देने से मना न कर सके और अपनी सेना उसे दे दी? क्या हर अच्छे- बुरे की सहायता करना आवश्यक था? पहले उसे लड़ने के लिए सेना दें और बाद में उसे लड़ने से मना करें। यह कैसा मजाक है? कथावाचक गुरु और श्रोता भक्त इस प्रसंग (कि अर्जुन ने नारायणी सेना की उपेक्षा की भगवान् कृष्ण को माँग लिया और महाभारत जीत लिया) से भले ही आनन्दित होते हों, पर मुझे तो प्रक्षिप्त लगता है, क्योंकि शान्ति का प्रयास पहले होना चाहिए और उसके विफल होने पर युद्ध की तैयारी (सहायता देना)। कृष्ण दुर्योधन के अन्याय, अत्याचार से खूब परिचित थे और उसे मिटाने के लिए युधिष्ठिर, भीम व अर्जुन (यदि गीता का प्रमाण मानें) को बार-बार युद्ध के लिए प्रेरित करते रहते थे। फिर उसके पक्ष में लड़ने के लिए अपनी सेना कैसे दे सकते थे?

यदि यादव सेना दुर्योधन की तरफ से लड़ी थी, तो इसका कारण बलराम का दुर्योधन के प्रति पक्षपात भी हो सकता है। वैसे भी अर्जुन द्वारा सुभद्रा का अपहरण करने के कारण सम्पूर्ण यादव सेना व बलराम पाण्डवों के प्रति क्रोध से भर गये थे और बलराम ने तो यहाँ तक कह दिया था कि-

अद्य निष्कौरवामेकः करिष्यामि वसुंधराम्।
न हि मे मर्षणीयोऽयमर्जुनस्य व्यतिक्रमः।।
(आदिपर्व।।२१९-३१।।)

"अर्जुन का यह अन्याय मेरे लिए असह्य है। आज मैं अकेला ही इस वसुन्धरा को कुरुवंशियों से विहीन कर दूँगा।" भेज, वृष्णि और अन्धकवंश के समस्त वीरों ने उन्हीं का अनुसरण किया। केवल एक कृष्ण थे, जिन्होंने अर्जुन का समर्थन किया था। अर्जुन का गुण, गौरव व बल, पराक्रम बताकर कृष्ण ने सबको शान्त किया था। सम्भवतः बाद तक भी बलराम और दूसरे यादव इस बात को पचा न पाये हों। इसीलिए महाभारत युद्ध में बलराम ने पाण्डवों का साथ नहीं दिया, पर वे कृष्ण के विरुद्ध (दुर्योधन के पक्ष में) भी नहीं लड़ सके। जब भीम ने दुर्योधन की जाँघ पर गदा मारकर उसे गिरा दिया, तो बलराम वहाँ पहुँच गये और इसे नियम का उल्लंघन बताकर क्रोधित हो भीम को मारने के लिए दौड़ पड़े थे (शल्य पर्व, ६०-६)। वहाँ भी श्रकृष्ण ने उन्हें दुर्योधन के अत्याचार (अभिमन्यु वध आदि) बताकर बड़ी मुश्किल से शान्त किया था।

यदि महाभारत का लेख सत्य है, तो हमें नहीं भूलना चाहिए कि मद्य-पान निषेध करने पर भी बलराम सहित कृत वर्मा, सात्यकि, गद, बभ्रु आदि यादव श्रीकृष्ण के सामने ही शराब पीने लगे थे (मौसल पर्व ३-१६)। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि यदुओं के विनाश के समय भी यादवों के राजा उग्रसेन थे (मौसल, २-२७), श्रीकृष्ण नहीं। फिर वे महाभारत युद्ध के समय यादवी नारायणी सेना दुर्योधन को कैसे दे सकते थे?

(क्रमशः)

www.thearyasamaj.org

स्वामी विवेकानन्द : एक परामर्श (2)

(स्वामी संकल्पानन्द सरस्वती)

धार्मिक मान्यताएं और भ्रान्तियाँ

दयानन्द की धर्मसम्बन्धी मान्यता है कि धर्म ईश्वरीय होता है और वह सब के लिए समान होता है। कोई मनुष्य न तो धर्म का निर्माण कर सकता है और न ही चला सकता है। अर्थात् वर्तमान में चल रहे तथाकथित धर्म वास्तव में धर्म नहीं, बल्कि मत, पन्थ, सम्प्रदाय - मज़हब आदि हैं। धर्म ईश्वरीय होता है, जैसे अग्नि का धर्म जलाना, प्रकाश देना है, जल का धर्म ऊपर से नीचे की ओर बहना है, पत्थर का धर्म पानी में डूबना है, लकड़ी का धर्म पानी में तैरना है, लोहे का धर्म चुम्बक के प्रति आकर्षित होना है, गाय का धर्म घासादि खाना है, शेर का धर्म मांस खाना है, इत्यादि। कृपया बताएं - क्या किसी योगी, महात्मा, वैज्ञानिक या तपस्वी ने ये धर्म उन-उन पदार्थों में लगाए हैं, स्थापित किए हैं? उत्तर होगा- कदापि नहीं। न पहले किसी ने ये गुण लगाए हैं, न आज कोई लगा सकता है, और न भविष्य में कोई लगा सकेगा। ऐसे ऋत् और सत्य धर्म को दयानन्द मानते थे। वे धर्म की व्याख्या - **यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः, धारयति इति धर्मः, धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठः, धर्मो धारयति प्रजाः,** धृति-क्षमा-दम-अस्तेयादि दस लक्षण, इत्यादि मानते थे। धर्म मनुष्यकृत नहीं होता। जो मनुष्यकृत होता है, वो धर्म नहीं, बल्कि मत-पन्थ-सम्प्रदाय या मज़हब होता है। धर्म सत्य एवं विज्ञान-अधिष्ठित और वेदानुकूल होता है। वेदविरुद्ध तथाकथित धर्म वास्तव में अधर्म होता है। श्रीमद्भागवत में भी कहा है-

'वेद प्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तदविपर्ययः'। दयानन्द के मन्तव्य वैदिक ऋषि-मुनियों की मान्यताओं से मेल खाते हैं। इसलिए संसार में एक ही सत्य दार्शनिक, वैज्ञानिक, मौलिक एवं ईश्वर-प्रणीत वेदधर्म या वैदिकधर्म है।

विवेकानन्द की धर्मविषयक मान्यताएं सबको खुश करने की रही हैं। कभी श्रीराम की स्तुति, कभी श्रीकृष्ण की, फिर कभी अनीश्वरवादी बुद्ध को ईश्वर माना, कभी गौतम बुद्ध को ईसा के साथ जोड़ दिया। वे बुद्ध और ईसा को ईश्वरावतार मानते थे। विवेकानन्द अपनी कल्पना से लिखते हैं- वही बुद्ध ईसा हुए। बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी, मैं पाँच सौ वर्षों में पुनः आऊँगा, तो पाँच सौ वर्षों के बाद ईसा आए। समस्त संसार को बुद्ध और ईसा ने बाँट लिया है। वे दो विराट् ज्योतियाँ थीं। संसार में जहाँ कहीं भी किंचित् ज्ञान है, लोग या तो बुद्ध या ईसा के सामने सिर झुकाते हैं। पाँच सौ वर्षों बाद मुहम्मद आए। फिर पाँच सौ वर्षों बाद प्राटेस्टंट की लहर चली, मार्टिन लूथर आए। ईसा और बुद्ध ईश्वर थे, दूसरे सब पैगम्बर थे।

विवेकानन्द बाइबिल, कुरान शरीफ को भी ईश्वरीय पुस्तक मानते थे, परन्तु वेद-प्रामाण्य कुछ सीमा तक ही मानते थे। वे कहते हैं- "मैं वेदों का उतना ही अंश मानता हूँ, जितना युक्तिसंगत है।" उनका यह भी कहना है कि वेद के अंश तो स्व-विरोधी हैं- Self-contradictory - वदतोव्याघात है, वेद असिद्ध व्यक्तियों के लिए हैं, किन्तु सिद्धावस्था में तो वेदों के परे जाना पड़ता है। बहुत-से मन्त्र ऐसे हैं, जो ईश्वर-प्रसूत नहीं माने जा सकते, कारण कि उनमें प्राणीमात्र को हानि पहुँचाने का विधान है, जैसे यज्ञ में हिंसा, बलि इत्यादि।"

विवेकानन्द की मान्यता थी कि वेदसंहिता भाग में अनन्त स्वर्ग का वर्णन है, जैसे ईसाई और मुसलमानों का है। वे वेदसंहिता को केवल इतिहास और भाषा-शास्त्र की दृष्टि से देखते थे। वेद कर्मकाण्डपरक हैं, परन्तु आरण्य के उपनिषद् ज्ञानकाण्डपरक होने से अधिक महत्वपूर्ण हैं। ऐसी विपरीत बातें करने वाले विवेकानन्द ने न कभी वेदाध्ययन किया था और न कभी वेदों को जाना था। कोई अनभिज्ञ मनुष्य ही ऐसी बातें बिना देखे-सोचे कह सकता है। महात्मा बुद्ध ने यज्ञ में होने वाली पशुहिंसा - जो वैदिक काल की अवनति का कारण थी - देखकर यज्ञों का विरोध किया, जिन वेद-मन्त्रों

www.thearyasamaj.org

से यज्ञ सम्पन्न होते थे, उन वेद-मन्त्रों का भी विरोध किया और जिस वेद को ईश्वरीय वाणी कहते हैं, तो महात्मा बुद्ध ने ऐसे ईश्वर को भी मानने से इन्कार कर दिया। यह सब महात्मा बुद्ध ने अवश्य किया परन्तु वेदमन्त्रों की तह में जाकर, निरुक्त-निघण्टु-अष्टाध्यायी, महाभाष्य इत्यादि व्याकरण- ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने वेदों को जानने का कतई प्रयास नहीं किया। यदि वे ऐसा प्रयास करते, तो उस समय समाज को वे खाई से बाहर निकालने में समर्थ होते और वेदों का सच्चा प्रतिष्ठान करते, परन्तु दुर्भाग्य है कि इस दिशा में उनसे कुछ कार्य नहीं हुआ। ईसा पर बौद्ध, जरथ्रुस्ती और यहूदियों की मान्यताओं का प्रभाव था। विवेकानन्द का हिन्दुत्व ईसाइयत का पोषक था, जैसा कि उनके विचारों से जाना जाता है। ध्यान रहे कि विवेकानन्द के विचार भारतीयों को ईसाई होने से रोक नहीं सके। वे ईसा को ईश्वर ही मानते थे। भारतवासी ईसाई हो जाए या मुसलमान भी हो जाए, तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। विवेकानन्द के जीवन- काल में छुआछूत की पराकाष्ठा और हिन्दुओं की सहानुभूति न होने से मद्रास प्रान्त के सहस्रों अस्पृश्य ईसाई बने गए, परन्तु उन्होंने उनकी कोई सुध न ली।

विवेकानन्द ने वेदान्त का प्रचार अपने प्रभावशाली व्याख्यानों के माध्यम से किया, यह सूर्य प्रकाश जैसा स्पष्ट है। फिर प्रश्न है कि क्या वेदान्त पशुगण और मनुष्यगण को जीवात्मा की दृष्टि से भिन्न-भिन्न मानता है? वेदान्त तो इस वात को नहीं मानता और यह भी नहीं मानता कि ईश्वर ने पशुओं और जलचरों को मनुष्य के भोज्य रूप में बनाया है, जो वेदान्त इस प्रकार की शिक्षा देता है, उसी वेदान्त के प्रचारक विवेकानन्द कहते हैं कि मैं मांस खाता हूँ, यह मेरी दुर्बलता है। पशु हमारे भाई हैं, शारीरिक श्रम करने वालों के लिए मांसाहार अनिवार्य है। क्या यह धर्म- प्रचार या अध्यात्म है? जव एक भक्त ने पूछा कि मांस-मछली खाना क्या उचित और आवश्यक है? तो उत्तर में विवेकानन्द कहते हैं- 'खूब खाओ भाई, इससे जो पाप होगा, वह मेरा।' (विवेकानन्द जी के संग में, पृ० २६७) विवेकानन्द ने पुनः कहा - "वैदिक और मनु के धर्म में मछली और मांस खाने का विधान है।' (वही, पृ० २६६) देख लीजिए एक गीता, उपनिषद् और वेदान्त जानने वाले और उनका प्रचार करने वाले की बात। ऐसे वे विवेकानन्द तो नहीं परन्तु अ-विवेकानन्द ही ज्ञात होते हैं।

अब देखिए- आदि शंकराचार्य ने बौद्धधर्म को भारत से बाहर निकाल दिया और आस्तिक धर्म की स्थापना की। परन्तु विवेकानन्द ने महात्मा बुद्ध का माना है और बौद्धधर्म को बाहर करने वाले शंकराचार्य को भी माना है। यह किस प्रकार हो सकता है? इससे तो यह बात सिद्ध होती है कि विवेकानन्द के सिद्धान्त, आचार-विचार और व्यवहारों में निश्चितता नहीं थी, वे स्थिर-बुद्धि नहीं थे, वे ध्रुव निश्चय वाले नहीं थे और न ही सच्चे धर्म के प्रति उनकी अटूट निष्ठा थी। इससे स्पष्ट होता है कि **'गंगा गए गंगादास, जमना गए जमनादास'**। ऐसे की मान्यता कौन करें?

वेद केवल कर्मकाण्ड की पुस्तक नहीं है, जैसा कि विवेकानन्द का विचार है। चारों वेदों में ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और विज्ञान-काण्ड - सब सत्य विद्याओं का वर्णन है, केवल कर्मकाण्ड का नहीं। अतः वेद केवल कर्मकाण्ड की बात करते हैं, ऐसा मानना स्वयं की वेदों से अनभिज्ञता का परिचायक है। मनुस्मृति में मछली, मांस, मद्य आदि के सेवन का निषेध किया गया है। अतः इनका ग्रहण करना धर्म तो नहीं, वल्कि निषिद्ध धर्म ही माना जाएगा। वेदों में पशुहिंसा, यज्ञ में बलि देना, मांसाहार इत्यादि का समर्थन करता हुआ एक भी मन्त्र नहीं है। यह बात हम दावे के साथ कह सकते हैं। यदि किसी को इस वात में शंका या विरुद्ध मत हो, तो विमर्श या शास्त्रार्थ के लिए हमारा विनम्र आह्वान स्वीकार कीजिए। विवेकानन्द कहते हैं कि वैदिक काल में ब्राह्मण गोमांस खाया करते थे। विवेकानन्द स्वयं भी मांस खाते थे और उसका दृढ़ समर्थन भी करते थे। हमारे शास्त्रों में योगियों के लक्षण में सर्वप्रथम प्राणीमात्र के प्रति अहिंसा के पालन का प्रावधान किया गया है और मांस खाने वाला भारत का एक स्वामी - संन्यासी इस प्रकार फिर भी योगी कहलाए, क्या यह महद् आश्चर्य की बात नहीं है? विवेकानन्द

www.thearyasamaj.org

के गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस ने कुत्ता बन कर अर्थात् कुत्ते के शरीर में घुसकर गाय का मांस खाया ऐसा लिखा गया है। विवेकानन्द ने यह भी लिखा है कि मनुष्य शरीर की रचना ऐसी है, जिसमें भोज्य मांस के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। धन्य हो विवेकानन्द, धन्य हो आप भी और आपके गुरु भी! मांसाहार के इस जघन्य अपराध से आप किस प्रकार बच सकोगे? जिस महात्मा बुद्ध ने पशुबलि का घोर विरोध किया, अहिंसा को पुनर्स्थापित करने के लिए आजीवन प्रयास किया, उसी महात्मा बुद्ध के बौद्धधर्मी देशों में कीड़े-मकोड़े, मेंढ़क आदि प्रतिदिन खाए जाते हैं। जैसा यह विपरीत कार्य है, ठीक उसी प्रकार विवेकानन्द के आचार-विचार विपरीत हैं। ऐसे स्वामी की कौन मान्यता करे? विश्व हिन्दू परिषद् आदि के लोग शंकराचार्य को मानते हैं कि उन्होंने बौद्धधर्म को भारत से निकाल दिया और भारत को बचाया, परन्तु इससे विपरीत यही विश्व हिन्दू परिषद् वाले ब्रह्मदेश (म्यांमार) में सनातन धर्म स्वयं सेवक संघ की स्थापना करके महात्मा बुद्ध की मूर्तियों के सामने नतमस्तक होते हैं। क्या कहें? सच में हिन्दुओं के साथ विडम्बना का कोई पारावार नहीं रहा है। अतिथि सत्कार के लिए बकरे और बैलों की हत्या का विधान वेदों में है- यह विधान विवेकानन्द ने लिख कर महान् अपराध किया है और सारे शाकाहारी जगत् पर आघात किया है। उनके इस भ्रम की क्या समीक्षा करें? विवेकानन्द पाश्चात्यों के अन्धानुयायी थे। बस, यही एक सत्य है। वेदों में अनित्य इतिहास का वर्णन नहीं है, क्योंकि परमपिता-परमात्मा ने वेदों का प्रकाश मानव सृष्टि के आरम्भ काल में समस्त मानवजाति के संविधान के रूप में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा - इन चार सर्वाधिक पवित्र आदि ऋषियों के अन्तःकरण में किया है। अतः वेदों में विशुद्ध - वैज्ञानिक और नित्य अपौरुषेय ज्ञान है। जब मानवजाति की सर्वप्रथम पीढ़ी इस धरातल पर उत्पन्न हुई थी, तब प्रकाशित हुए इन वेदों में मानवीय अनित्य इतिहास का वर्णन कैसे हो सकता है? यह सच है कि वेदों में गंगा, यमुना, सरस्वती आदि शब्द पाए जाते हैं, परन्तु इससे वेदों को इतिहास-भूगोल की पुस्तकें मान लेना उचित नहीं। कई तथाकथित विद्वान् वेदों में इन नामों को देखकर वेदों में इतिहास-भूगोल का वर्णन होने का आक्षेप करते हैं। वस्तुतः ऐसे विद्वान् वेदों में प्रयुक्त इन शब्दों के सत्यार्थ को जानते नहीं हैं, अन्यथा वेदों पर ऐसा आक्षेप या शंका नहीं करते। वेदों में प्रयुक्त 'गंगा' का अर्थ उत्तर भारत में बहने वाली नदी नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है - प्रबलवाहिनी। ऐसे ही 'यमुना' का अर्थ है - विस्तीर्णवाहिनी। 'सरस्वती' का अर्थ है - पूर्ण जलयुक्त, इत्यादि। ध्यातव्य है कि - Veda is an eternal constitution of the Creator. अर्थात् वेद सृष्टिकर्ता ईश्वर प्रदत्त शाश्वत संविधान है। यदि वेद मनुष्यमात्र के लिए आदिम संविधान न होते, सब सत्य विद्याओं का स्रोत न होते, तो मनुष्य ज्ञान-विज्ञान कहाँ से प्राप्त कर सकता था? मां के पेट से तो कोई सीख कर आता नहीं है। चाहे पति-पत्नी दोनों पी.एच. डी. ही क्यों नहीं हैं, फिर भी उनकी सन्तान मैट्रिक पढ़ी या चौथी-पाँचवी कक्षा तक पढ़ी भी पैदा नहीं होती है। नैमित्तिक ज्ञान तो अर्जित ही करना पड़ता है। विस्तारभय से हम यहाँ वेदों में आए इस प्रकार के अन्य नामों की चर्चा नहीं करते हैं।

दयानन्द ने 'गोकरुणानिधि' नामक एक लघु ग्रन्थ लिखा है। गाय आदि सर्वोपकारी प्राणियों के रक्षण, संवर्धन के लिए अंग्रेजों के शासनकाल में हस्ताक्षर अभियान चलाया। उन्होंने हरियाणा के रेवाड़ी में देश की सर्वप्रथम गोशाला खुलवाई। पशु-हिंसा और मांसाहार के विरुद्ध देश भर में प्रबल आन्दोलन का सूत्रपात किया। यह थी सच्ची वैदिक परम्परा का पालन। किन्तु विवेकानन्द पाश्चात्यों के अन्धानुयायी होने से उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ भी कार्य नहीं किया। न तो वैदिक परम्परा का पालन किया और न ही स्वामी -संन्यासियों जैसा आचरण किया।

सामाजिक सुधार का क्षेत्र

'अष्टवर्षा भवेद् गौरी, नववर्षा च रोहिणी।
दसवर्षा भवेत्कन्या ततृ ऊर्ध्वं रजस्वला।'

इस प्रकार की मिथ्या मान्यता हमारे देश के सामाजिक जीवन में विद्यमान थी। यह भी कहा जाता था कि रजस्वला कन्या के दर्शन से माता-पिता नरक-गामी होते हैं। मतलब यह कि बालविवाह की कुप्रथा

www.thearyasamaj.org

हमारे समाज में प्रचलित थी। बालविवाहों के कारण समाज में विधवाओं की संख्या भी अधिक होती थी और विधवा-विवाह को शास्त्रसम्मत नहीं माना जाता था। हिन्दूजाति की इस दुर्बल मनोभावना का विधर्मियों ने बहुत लाभ उठाया। यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रतिवर्ष भारत के हिन्दुओं की ३५००० विधवाएं अन्यों के घर आवाद करती थीं। इससे हिन्दुओं की संख्या घटती थी और विधर्मियों की संख्या में बाढ़ आती थी। यह भी सांख्यिकीय माहिती उपलब्ध है कि सन् ६०० से १६०० पर्यन्त १००० वर्ष में १० करोड़ हिन्दू विधर्मियों की चंगुल में फंसे अर्थात् हिन्दुओं की संख्या घटती रही। वास्तविकता तो यह है कि बालविवाह नहीं होने चाहिए और विधवा-विवाह या पुनर्विवाह की मान्यता शास्त्रों में है- इस बात की ओर दयानन्द ने समाज का ध्यान आकर्पित किया और इन कुप्रथाओं का भण्डाफोड़ कर बालविवाह बन्द करवाए और विधवा-विवाह को प्रोत्साहित किया। सतीप्रथा भी हिन्दू- समाज का कर्क रोग (केन्सर) थी। इन सभी के सुधारों के लिए विवेकानन्द चुप्पी साधे थे। इतना ही नहीं, वे तो इन बातों में सुधार करने को केवल माथापच्ची का काम मानते थे। क्या वेदान्त या प्रस्थानत्रयी में ऐसा लिखा है कि इन कुरीतियों से समाज को बचाने का कार्य नहीं करना चाहिए? यदि नहीं, तो हिन्दुत्व का डंका बजाने वाले और विदेशों में हिन्दूधर्म की महत्ता बताने वाले विवेकानन्द ने इस ओर से क्यों अपनी पीठ फेर ली?

जन्मना जातिवाद, अस्पृश्यता - छुआछूत, वेदाध्ययन का आरक्षण, इत्यादि बातों की ओर भी विवेकानन्द ने कोई ध्यान नहीं दिया। परिणामस्वरूप कई हिन्दू भाई-बहिन धड़ाधड़ विधर्मी बनते गए किन्तु किसी प्रकार परावर्तन (वापसी) का या शुद्धि का चक्र विवेकानन्द ने नहीं चलाया। हिन्दुओं की हो रही क्षति से उन्हें क्या लेना-देना था? बड़ा अचरज तो यह है कि आज की तथाकथित हिन्दूरक्षिणी सभाएं, संघ या परिषदें विवेकानन्द का कूद-कूद कर ढिण्ढोरा पीटती हैं, और वे उनके सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें कहते हैं कि जैसे विवेकानन्द कोई मसीहा थे और उनके चित्र, फोटो, पुतले, नामपट्ट आदि के माध्यम से इस प्रकार प्रचार-प्रसार किया जा रहा है कि उन जैसा हिन्दू-रक्षक अन्य कोई हुआ ही नहीं! मुझे तो शंका होती है कि कहीं दयानन्द की ज्येष्ठता-श्रेष्ठता इनको मनोमन चुभ तो नहीं रही? धन्य है गुरु गोविन्दसिंह जो ललकार के घोषणा करते थे कि -

'सवा लाख से एक लड़ाऊँ
चिड़ियों सों मैं बाज तड़ऊँ
तवे गोविंदसिंह नाम कहाऊँ।'

यह देखकर शोक होता है कि 'You will understand the Geeta better with your biceps, your muscles, a little stronger.' - इस प्रकार युवकों को समझाने वाले विवेकानन्द सामाजिक सुधार में कोई ठोस या जोश भरा काम नहीं कर सके।

दयानन्द ने गली-सड़ी हिन्दू जाति में, एक मुर्दा कौम में जान डाल दी, शुद्धि का चक्र चलाया, संसार का एक ही धर्म है- **'मनुर्भव'** अर्थात् मनुष्य बनो - यह बताया। दयानन्द ने मूर्तिपूजा की दीमक से जाति को सचेत किया, किन्तु ईश्वर की मूर्ति बनाने वाले तथा उसके नाम पर प्राणप्रतिष्ठा का ढोंग एवं पाखण्ड रचने वाले हिन्दू जाति के तथाकथित पण्डित लोग ईश्वर के निर्माता या बाप बन गए हैं। यह वही मूर्तिपूजा है, जिसने इस महान् जाति के साथ समस्त राष्ट्र को सैकडों वर्ष की पराधीनता का दास बनाए रखा। भगवान् ने आपको बनाया है यह सत्य विस्मृत कर मनुष्य ही भगवान् को बनाता जा रहा है! इससे घोर अज्ञान - अविद्या क्या हो सकती है? किन्तु काली माता का समर्थन कर, श्री रामकृष्ण परमहंस की मूर्तियाँ स्थापित कर विवेकानन्द ने समाज का पाखण्ड दूर करने के स्थान पर उसे उभारा है, उसे सींचा है, उसका समर्थन और पुष्टि की है। क्या कोई भी व्यक्ति वेदान्ती ईश्वर या ब्रह्म की मूर्ति बना सकता है? वेदान्ती-ईश्वर या ब्रह्म की मूर्ति सिद्ध कर सकता है? यदि हाँ, तो किसी भी आर्य विचारधारा के विद्वान् से इस विषय पर शास्त्रार्थ कर लेवे अथवा मैं ही शास्त्रार्थ के लिए आह्वान करता हूँ।

(क्रमशः)

❑❑

www.thearyasamaj.org

मनुष्यों का धर्म सत्याचार है जो सबका एक ही है

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून,मो०:-०९४१२९८५१२१)

धर्म शब्द का वास्तविक अभिप्राय क्या है? धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी परिभाषा है कि जो वस्तु जिन गुण व गुणों को धारण करती है, वह उसका धर्म कहलाता है। अग्नि रूप, दाह, ताप, प्रकाश आदि को धारण करती है तथा सदैव ऊपर की ओर ही गति करती है। यह सब अग्नि के गुण व धर्म कहलाते हैं। इसी प्रकार से वायु, पृथिवी, आकाश, जल आदि के गुण हैं। मनुष्य को किसे व क्या-क्या धारण करना चाहिये? संसार में सत्य व असत्य दो प्रकार के गुण हैं। मनुष्यों द्वारा सत्य भी बोला जाता है और असत्य भी। दोनों परस्पर विरोधी गुण हैं। अब इनमें से किसको धर्म व किसको अधर्म माना जाये? संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो यह चाहता हो कि दूसरे लोग उसके साथ असत्य का व्यवहार करें। सभी मनुष्य यह चाहते हैं कि उनके साथ दूसरे लोग सदैव सत्य का ही व्यवहार करें। सत्य उसे कहते हैं कि जो पदार्थ जैसा है, उसका वैसा ही वर्णन करना। उसके विपरीत यदि वर्णन किया जाये, तो वह सत्य न होकर असत्य कहलाता है। अग्नि में जलाने का गुण होता है। यदि कोई यह कहे कि अग्नि जलाता नहीं है, तो यह असत्य होगा। यदि कहें कि अग्नि में दाह वा जलाने का गुण होता है, तो यह सत्य माना जायेगा। इसी प्रकार से सत्य व्यवहार वा सत्याचरण धर्म व इसके विपरीत असत्य का व्यवहार अधर्म व असत्य कहलाता है। अब यह विचार करें कि सत्य क्या किसी स्थान विशेष के लोगों का गुण है या यह सार्वभौमिक सभी मनुष्यों का गुण है। सत्य बोलें, तो धर्म और संसार में सभी स्थानों वा देशों में सत्य व्यवहार ही मान्य है। इससे यह ज्ञात होता है कि सत्य बोलना व व्यवहार में सत्य का पालन व आचरण ही उचित व मान्य है। अतः सत्य धर्म का आवश्यक व प्रमुख अंग सिद्ध होता है। सत्य बोलना न हिन्दू धर्म, न ईसाई और न मुस्लिम धर्म, अपितु यह सर्वमान्य व सार्वभौमिक अर्थात् संसार के सभी लोगों का धर्म है। इसे सत्य- धर्म या मानवधर्म कह सकते हैं। संसार का कोई भी व्यक्ति सत्य इसलिए नहीं बोलता कि वह हिन्दू, ईसाई, मुस्लिम व सिख आदि मत का अनुयायी है, अपितु सत्य सार्वभौमिक धर्म होने से ही सर्वत्र सभी लोगों द्वारा इसका व्यवहार अनादि काल से किया जा रहा है।

धर्म का एक मुख्य व्यवहार ईश्वर की मनुष्यों पर अनेक कृपाओं के कारण सभी मनुष्यों द्वारा उन कृपाओं के लिए उसका धन्यवाद करना व कृतज्ञ होना है। इसके लिए उपासना पद्धति की आवश्यकता होती है। उपासना के लिए हमें ईश्वर व अपनी आत्मा का स्वरूप निर्धारित करना व जानना भी आवश्यक है। ईश्वर व जीवात्मा का सत्यस्वरूप वैदिकमत में ही पाया जाता है। जिन दिनों वेदेतर मत व सम्प्रदाय अस्तित्व में आये, उन दिनों उन स्थानों पर अविद्या के कारण ईश्वर व जीवात्मा का स्वरूप किसी को विदित नहीं था। यदि होता, तो फिर उनके बारे में पृथक्, पृथक् अपूर्ण व परस्पर विरोधी भी जानकारी प्रचलित व प्रसारित न होती। ईश्वर का स्वरूप कैसा है? इसका निर्धारण इस प्रकार कर सकते हैं कि जिसने इस संसार को बनाया

www.thearyasamaj.org

है, इसे चला रहा है, जिसने इसे धारण व वश में कर रखा है तथा जो इसकी अवधि पूरी होने पर इसका प्रलय वा संहार करता है, उस सत्ता को ईश्वर कहते हैं। हम समझते हैं कि ईश्वर की इस परिभाषा से किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। अब यदि ईश्वर सृष्टिकर्ता है, तो स्वाभाविक रूप से वह चेतन सत्ता होने के साथ निराकार, सर्वव्यापक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वशक्तिमान, आनन्दस्वरूप, जन्म व मरण से रहित अर्थात् अनादि, अजन्मा, अमर वा अविनाशी भी होगा। ईश्वर का धार्मिक अर्थात् दयालु, पक्षपातरहित, न्यायकारी, जीवात्मा को मनुष्य आदि योनियों में जन्म देने वाला, सभी कर्मों का साक्षी तथा कर्मफल प्रदाता होना भी आवश्यक है। इससे मिलते-जुलते तथा अविरोधी सभी गुण ईश्वर के ज्ञात व सिद्ध होते हैं। इस ब्रह्माण्ड की विशालता को देखकर ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, अनादि, नित्य, अमर व अनन्त सिद्ध होता है। अब जीवात्मा की चर्चा करते हैं। मनुष्य व इतर सभी प्राणियों का अध्ययन करने पर सब प्राणियों के शरीरों में विद्यमान जीवात्मा सत्य, चित्त, सुख का आकांक्षी, दुःख व दुःख के साधनों के प्रति उपेक्षा या द्वेष भाव रखने वाला, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, अनादि, नित्य, कर्मफलों में फंसा हुआ तथा ईश्वर व माता-पिता द्वारा कर्मफलों के अनुसार मनुष्यादि अनेकानेक योनियों में जन्म लेने वाला सिद्ध होता है। मनुष्यों का धर्म क्या है, चिन्तन व विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि ईश्वर व जीवात्मा को जानना, सही उपासना विधि, जो कि योगाभ्यास विधि ही है, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करना तथा सभी मनुष्यों व अन्य योनियों के प्रणियों के प्रति दया, प्रेम, स्नेह, सहयोग आदि का व्यवहार करना ही मनुष्यों का धर्म सिद्ध होता है। क्या मनुष्य के पास कोई आदर्श आचार संहिता व धर्म अधर्म विषयक कोई ज्ञान उपलब्ध है, तो इसका विचार करने पर "वेद" ही वह ज्ञान सिद्ध होता है, जो सभी मनुष्यों के लिए आचरणीय व पालनीय है। इस मान्यता के अनेक कारण हैं। यह मान्यता अन्य सभी मान्यताओं में सर्वाधिक निर्दोष एवं तर्क एवं युक्तियों से सिद्ध है। इसको जानने व समझने के लिए ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों का अध्ययन व ज्ञान आवश्यक है।

संसार में जो भी मनुष्य व महापुरुष उत्पन्न हुए व होते हैं, वे सब अल्पज्ञ होते हैं। वेदाध्ययन व योग साधना से मनुष्य अपने ज्ञान में वृद्धि कर योगी, मनीषी, ऋषि व महर्षि आदि बनते हैं/बन सकते हैं। जो मनुष्य योगी नहीं होगा और वेदों का सच्चा व यथार्थ ज्ञानी नहीं होगा, वह अवश्य भ्रमित होगा, निर्भ्रान्त कदापि नहीं हो सकता। यही कारण है कि हमें मत-मतान्तरों के ग्रन्थों में अज्ञान, परस्पर विरोधी बातें व विज्ञान विरुद्ध मान्यतायें प्राप्त होती हैं। सभी मत प्रायः एक दूसरे के विरुद्ध हैं, जबकि एक ईश्वर और सब मनुष्यों का एक उद्देश्य एवं लक्ष्य होने के कारण उनका एक ही धर्म होना युक्तिसंगत सिद्ध होता है। अतः सभी मतों की शिक्षायें भी एक समान व अविरोधी होनी चाहिये। इनमें समानता न होना ही मतप्रवर्तकों की अल्पज्ञता व अविद्या को प्रस्तुत करता है। महर्षि दयानन्द ने इसका दिग्दर्शन सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के ग्यारह, बारह, तेरह व चौदहवें समुल्लासों में कराया है। इसके साथ ही महर्षि दयानन्द ने इस ग्रन्थ के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश के अन्तर्गत वैदिक सिद्धान्तों व मान्यताओं को प्रस्तुत भी किया है। यह स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ही वस्तुतः सभी मनुष्यों का सच्चा व एकमात्र सार्वभौमिक धर्म है। हम यह भी

www.thearyasamaj.org

स्पष्ट कर दें कि पशुहिंसा व मांसाहार धर्म न होकर धर्म के विपरीत अधर्म व पापकर्म है, जो ईश्वरीय व्यवस्था से दण्डनीय होता है। पशुहिंसा करना ईश्वर के काम में बाधा उत्पन्न करना है। बाधा इस प्रकार कि परमात्मा ने पशु व पक्षियों आदि को मनुष्यों की भांति ही उनके पूर्वजन्मों के पाप-कर्मों के फल भोगने के लिए उत्पन्न किया है। मनुष्य इन पशुओं की हिंसा कर व मांसाहार कर ईश्वर के काम में बाधक बनते हैं, अतः ईश्वरीय-व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करने का दण्ड तो ऐसे लोगों को मिलेगा ही। ईश्वर ने वेदों में यजमान के पशुओं की रक्षा करने का विधान किया है और इनकी हिंसा के लिए कठोर दण्ड का विधान भी किया है। हम अनुमान करते हैं कि राम, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि वैदिक राजाओं के काल में पशुओं की हिंसा करने वालों को वेदानुसार कठोर दण्ड दिया जाता रहा होगा। परमात्मा ने मनुष्यों के भोजन के लिए अनेकानेक शाकाहारी स्वादिष्ट बल व शक्तिवर्धक पदार्थ बनाये हैं। उन्हीं का भक्षण कर सभी मनुष्यों को सन्तुष्ट रहना चाहिये। मांसाहार करना ऐसा है, जैसे स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना। ईश्वर ने जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र बनाया है। इसी कारण ईश्वर प्रेरणा तो सभी को करता है परन्तु रोकता किसी को नहीं है। संसार में जो दुःखी मनुष्य व इतर प्राणी देखे जाते हैं, वह इस बात का प्रमाण है कि ये अपने पूर्व जन्म व इस जन्म के बुरे कर्मों के कारण दुःखी हैं।

धर्म एक ही है, इसका यह प्रमाण भी है कि ईश्वर ने केवल एक वैदिक धर्म ही उत्पन्न किया था। सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल के १.९६ अरब वर्षों तक संसार में एक वैदिक धर्म ही विद्यमान रहा। कारण यह था कि सभी ऋषि-मुनि विद्वान् थे, अतः असत्य मत अस्तित्व में नहीं आ सकते थे। वेदेतर सभी मत व सम्प्रदाय मताचार्यों द्वारा मध्यकाल के अज्ञानता के युग में अपने अल्पज्ञान से बनाये हैं, इसी कारण उसमें अज्ञानता तथा मनुष्य के हित व अहित की बातें विद्यमान हैं। वेद ही एक मात्र ऐसे ग्रन्थ हैं, जो ज्ञान व विज्ञान दोनों दृष्टियों से पूर्णतः निर्दोष हैं। इस कारण एकमात्र वेदधर्म ही सभी मनुष्यों का धर्म सिद्ध होता है। लेख समाप्ति पर यह भी उल्लेख कर दें कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति है। अभ्युदय सांसारिक उन्नति को कहते हैं जैसा कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र, योगेश्वर श्री कृष्ण व महर्षि दयानन्द जी सहित ऋषियों का यश (अभ्युदय) विद्यमान् है। निःश्रेयस मोक्ष जन्म व मरण से ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्षों के लिए अवकाश को कहते हैं। इस अवधि में जीवात्मा दुःखों से सर्वथा पृथक् रहकर ईश्वर के सान्निध्य में रहते हुए सुख की चरमावस्था आनन्द का भोग करता है। मनुष्य जो भी अच्छे व बुरे कर्म करता है, वह अपने जीवन व अपने प्रिय कुटुम्बियों व मित्रों को सुखी बनाने के लिए करता है। इस काम में वह भूल जाता है कि सुख प्राप्ति के लिए वह जो अशुद्ध व भ्रष्ट आचरण का सहारा लेता है, वह ईश्वरीय व्यवस्था में दण्डनीय है। अविद्या से ग्रस्त नास्तिक लोग ही अशुभ कर्म कर पाप के बन्धन में फंसते हैं। अतः दुःखों से सर्वथा मुक्त होने का सत्य मार्ग केवल वैदिकधर्म की शरण में आने पर ही मिल सकता है। वेदों का अध्ययन व उसकी शिक्षाओं का आचरण ही संसार के सभी मनुष्यों का साझा धर्म है। विवेक बुद्धि से इसे समझने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी के साथ इस चर्चा को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

❑❑

www.thearyasamaj.org

बात सिर्फ मन्दिर की नहीं।।

(राजीव चौधरी, 9643886058)

कानून की नजर में २३ दिसम्बर १९४९ से चला आ रहा अयोध्या राम जन्म भूमि विवाद आस्था और संवेदनशीलता का विषय है, ये भावनाओं और धर्म के मसले हैं, जिसे हिन्दुओं और मुस्लिमों को आपस में मिल- बैठकर सुलझा लेना चाहिए। क्या ये महज इत्तफाक है कि उत्तर प्रदेश में नए मुख्यमंत्री के गृह- प्रवेश के फौरन बाद सुप्रीम कोर्ट ने बाबरी मस्जिद मामले में दोनों पक्षों को समझौते का रास्ता निकालने को कहा है? सुप्रीम कोर्ट ने तमाम व्यस्तताओं के बीच वक्त निकाल कर न सिर्फ सुब्रह्मण्यम स्वामी की याचिका को सुना बल्कि घर के एक बुजुर्ग की तरह झगड़ते बच्चों को समझौता करने का सुझाव दिया। जबकि हिन्दुओं की तरफ से तर्क ये है कि बात सिर्फ मन्दिर की नहीं, रामजन्म भूमि को देवत्व प्राप्त है, वहाँ राम मंदिर हो न हो, मूर्ती हो न हो, वो जगह ही पूज्य है। वो जगह हट नहीं सकती।

हालांकि ऐसा नहीं है कि यह मामला सिर्फ १९४९ के बाद ही संज्ञान में आया बल्कि आस्था उपासना की यह जंग सदियों पूर्व तब से चली आ रही है, जब एक तुर्की लुटेरे चंगेज खान के परपोते "जहिर उद-दिन मुहम्मद बाबर" ने 'वर्तमान क विवादित स्थान' हिन्दू आस्था के प्रतीक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र का मन्दिर तोड़कर बाबरी मस्जिद का निर्माण कर दिया था। इसके सैंकड़ों साल बाद भारतीय जनता पार्टी के नेताओं की अगुवाई में बाबरी मस्जिद की जगह पर ही भव्य राम मंदिर बनाने का अभियान "मंदिर वहीं बनाएंगे" के नारे के साथ शुरू हुआ। इसकी परिणति ६ दिसंबर १९९२ को हुई, जब इन सारे नेताओं के कहने पर लाखों हिंदू बाबरी मस्जिद के इर्द-गिर्द इकट्ठा हुए और देखते-देखते मस्जिद गिरा दी गई।

यदि इस विषय का थोड़ा गंभीरता से अध्ययन किया जाये, तो ऐसा नहीं कि यह पहली मस्जिद थी जिसके गिरने से मुस्लिम समुदाय को कोई बड़ा झटका माना जाये। या फिर आज हिन्दुस्तान के मुसलमान कह रहे हों कि मस्जिद जहाँ एक बार बन गई, तो वो कयामत तक रहेगी, वो अल्लाह की संपत्ति है, वो किसी को दे नहीं सकते। परन्तु ऐसा नहीं है, पूर्व में अरब देशों में जहाँ से इस्लाम का उदय हुआ, वहाँ पर भी मक्का में अल-हरम नाम से एक विख्यात मस्जिद है। इस प्राचीन मस्जिद के पिछले दिनों सऊदी सरकार के निर्देश पर कई खंभे गिरा देने के अलावा १९९८ में बीबी आमिना के मकबरे और कब्र को गिराने की खबरों समेत इमाम अली का वह घर, जिसमें इमाम हसन और इमाम हुसैन का जन्म हुआ, वह घर जिसमें ५७० में नबी का जन्म हुआ गिराने के बाद उसको मवेशी बाजार में स्थानांतरित कर देने के बाकये भी सामने आये थे। ऐसी तोड़-फोड़ के लिए सऊदी अरब के शासकों से कोई पूछताछ इस्लाम के मानने वालों द्वारा नहीं होती है। इस कारण मुझे लगता है कि भारत का इस्लाम अन्य देशों के इस्लाम से अलग है। यहाँ

www.thearyasamaj.org

के मुसलमानों को ये भी लगता है कि यह एक मस्जिद का मसला नहीं है, अगर हम आत्मसमर्पण कर दें, तो कहीं ऐसा न हो कि इसकी आड़ में उनके मजहब को खतरा हो जाए। इसे शेष विश्व के सामने हमारी कमजोरी न कहा जाये और शायद मुस्लिम धर्मगुरु, मौलाना या तथाकथित मुस्लिम रहनुमा इस बात की जवाबदेही से भी डर रहे हैं कि शेष मुसलमान उनसे सवाल न कर बैठे कि अचानक अपना दावा क्यों छोड़ दिया?

इस बात में कोई दो राय नहीं कि भारत का इस्लाम अन्य देशों के इस्लाम के सामने सहिष्णु है। कारण हमारे पूर्वज और संस्कृति साझी है। इसलिए मुस्लिम समुदाय की तरफ से बार-बार ये कहा जा रहा है कि अगर इस मामले में सुप्रीम कोर्ट फैसला कर दे, तो हमें कोई ऐतराज नहीं है। अब सवाल ये है कि अदालत इस मसले का फैसला क्यों नहीं कर पा रही है, इसके कई कारण हैं। दरअसल अदालत के लिए फैसले में सबसे बड़ी दिक्कत है मामले की सुनवाई करना। सुप्रीम कोर्ट में जजों की संख्या कम है। यह संभव नहीं है कि हाईकोर्ट की तरह तीन जजों की एक बेंच सुप्रीमकोर्ट में भी मामले की सुनवाई करे। इलाहाबाद हाईकोर्ट में सुनवाई के दौरान कई टन सबूत और कागजात पेश हुए। कोई हिन्दी में है, कोई उर्दू में है, तो कोई फारसी में है। इन कागजों को सुप्रीमकोर्ट में पेश करने के लिए जरूरी है कि इनका अंग्रेजी में अनुवाद किया जाए। अभी तक सारे कागजात ही सुप्रीमकोर्ट में पेश नहीं हो पाए हैं और सबका अनुवाद का काम पूरा नहीं हुआ है। अगर रोजाना सुनवाई करें, तो कई बार जज रिटायर हो जाते हैं और नए जज आते हैं। तो सुनवाई पूरी नहीं हो पाएगी। इसीलिए चीफ जस्टिस ने कोर्ट से बाहर समझौता करने की सलाह दी है। ये भी हो सकता है कि चीफ जस्टिस के दिमाग में ये बात रही हो कि अगर कोर्ट कोई फैसला कर भी दे, तो समाज शायद उसे आसानी से स्वीकार ना करे।

पूरे मामले को दूर से देखने पर कोई पेंच नजर नहीं आता किन्तु जब इसके अनेकों पक्षकार और मस्जिद एक्शन कमेटी व हिन्दू संस्थाओं के बयान सुने तो यह मामला सुलझता नजर नहीं आता क्योंकि जब समझौते की पहली शर्त यही है कि मस्जिद की जगह पर दावेदारी पर बात नहीं होगी, तो फिर बात किस मुद्दे पर करनी है? हालांकि कुछ लोग ये तर्क देते हैं कि कुछ मुस्लिम देशों में निर्माण के लिए मस्जिदें हटाई गई हैं और दूसरी जगह ले जाई गई हैं, तो क्यों नहीं बाबरी मस्जिद के लिए कोई अन्य जगह-जमीन लेकर इसका निर्माण कर लिया जाये। नमाज कहीं भी अदा की जा सकती है, उसके लिए इस्लाम में कोई एक विशेष जगह मुकर्रर नहीं है। इसके बाद मुस्लिम समुदाय को खुद सोचना चाहिए कि जब अन्य समुदाय के टैक्स के पैसों से उसे हज में सब्सिडी दी जा रही है, ताकि वो अपने नबी के जन्मस्थान पर जाकर अपनी उपासना कर सकें, तो उसे भी बहुसंख्यक समुदाय की आस्था को ध्यान में रखकर उनके अराध्य देव के लिए अपनी जिद छोड़ देनी चाहिए। क्योंकि यदि कल सुब्रह्मण्यम स्वामी के अनुसार केंद्र सरकार मंदिर निर्माण के लिए राज्यसभा और लोकसभा में कोई नया कानून ले आई, तब सुप्रीम कोर्ट तो बाध्य होगा ही साथ में मुस्लिम समुदाय भी उस फैसले को मानने के लिए बाध्य होगा। जिसके बाद गंगा-जमनी तहजीब की बात करना बेमानी लगेगा।

❑❑

www.thearyasamaj.org

निजामुद्दीन औलिया दरगाह का सच

(डॉ० विवेक आर्य,मो0:-०९३१०६७६०६०)

पिछले दिनों समाचारपत्रों में दिल्ली की निजामुद्दीन औलिया दरगाह के दो खादिमों के पाकिस्तान जाने और गायब होने की खबर छपती रही हैं, हालांकि दोनों खादिम वाद में मिल गए थे। चूँकि यह मामला निजामुद्दीन औलिया की दरगाह से सम्बंधित था। इसलिए मीडिया द्वारा प्राथमिकता से इसे उठाया गया। मगर निजामुद्दीन दरगाह के इतिहास से सम्बंधित कुछ तथ्यों को मैं इस लेख के माध्यम से प्रकाश में लाना चाहता हूँ।

प्रायः किसी भी दैनिक अखबार को उठा कर देखिये आपको पढ़ने को मिलेगा कि आज हिंदी फिल्मों का कोई प्रसिद्ध अभिनेता या अभिनेत्री अजमेर में गरीब नवाज अथवा निजामुद्दीन औलिया की दरगार पर चादर चढ़ा कर अपनी फिल्म के हिट होने की मन्नत माँगने के लिए गया। भारतीय समाज में भी एक विशेष आदत है, वह है अँधा अनुसरण करने की। क्रिकेट स्टार, फिल्म अभिनेता, बड़े उद्योगपति जो कुछ भी करें, उसका अँधा अनुसरण करना चाहिए चाहे बुद्धि उसकी अनुमति दे चाहे न दे।

दिल्ली के एक कोने में निजामुद्दीन औलिया की दरगाह है। १९४७ से पहले इस दरगाह के हाकिम का नाम ख्वाजा हसन निजामी था। आज के मुस्लिम लेखक निजामी की प्रशंसा उनकी उर्दू साहित्य को देन अथवा बहादुर शाह द्वारा द्वारा १८५७ के संघर्ष पर लिखी गई पुस्तक को पुनः प्रकाशित करने के लिए करते हैं। परन्तु निजामी के जीवन का एक और पहलू था- मतान्धता।

धार्मिक मतान्धता के विप से ग्रसित निज़ामी ने हिन्दुओं को मुसलमान वनाने के लिए १९२० के दशक में एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था- "दाइये इस्लाम"। इस पुस्तक को इतने गुप्त तरीके से छापा गया था कि इसका प्रथम संस्करण कब प्रकाशित हुआ और कब समाप्त हुआ इसका मालूम ही नहीं चला। इसके द्वितीय संस्करण की प्रतियाँ अफ्रीका तक पहुँच गई थी। एक आर्य सज्जन को उसकी यह प्रति अफ्रीका में प्राप्त हुई, जिसे उन्होंने स्वामी श्रद्धानंद जी को भेज दिया। स्वामी जी ने इस पुस्तक को पढ़ कर उसके प्रतिउत्तर में एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम था "खतरे का घंटा"। इस पुस्तक में उस समय के २१ करोड़ हिन्दुओं में से १ करोड़ हिन्दुओं को इस्लाम में दीक्षित करने का लक्ष्य रखा गया था।

इस पुस्तक के कुछ सन्दर्भों के दर्शन करने मात्र से ही लेखक की मानसिकता का बोध हमें आसानी से मिल जायेगा कि किस हद तक जाकर हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए मुस्लिम समाज के हर सदस्य को प्रोत्साहित किया गया था। जिससे न केवल धार्मिक द्वेप के फैलने की आशंका थी, अपितु दंगे तक भड़कने के पूरे आसार थे। आइये, इस पुस्तक के कुछ अंशों का अवलोकन करते हैं।

१. फकीरों के कर्तव्य - जीवित पीरों की दुआ से बे औलादों के औलाद होना या बच्चों का पूरा जीवित रहना या बीमारियों का दूर होना या दौलत की वृद्धि या मन की मुरादों का पूरा होना, बद्दुआओं का भय आदि से हिन्दू लोग फकीरों के पास जाते हैं और बड़ी श्रद्धा रखते हैं। मुसलमान फकीरों को ऐसे छोटे- छोटे वाक्य याद कराये जावें, जिन्हें वे हिन्दुओं के यहाँ भीख माँगते समय बोलें और जिनके सुनने से हिन्दुओं पर इस्लाम की अच्छाई और हिन्दुओं की बुराई प्रगट हो।

२. गाँव और कस्वों में ऐसा जुलूस निकालना जिनसे हिन्दू लोगों में उनका प्रभाव पड़े और फिर उस प्रभाव द्वारा मुसलमान बनाने का कार्य किया जावे।

३. गाने बजाने वालों को ऐसे- ऐसे गाने याद कराना और ऐसे नये- नये गाने तैयार करना, जिनसे मुसलमानों में बराबरी के बर्ताव की बातें और मुसलमानों की करामातें प्रगट हो।

www.thearyasamaj.org

४. गिरोह के साथ नमाज ऐसी जगह पढ़ना, जहाँ उनको दूसरे धर्म के लोग अच्छी तरह देख सकें।

५. ईसाइयों और आर्यों के केन्द्रों या उनके लीडरों के यहाँ से उनके खानसामों, कहारों, चिट्ठीरसारों, कम्पाउन्डरों, भीख माँगने वाले फकीरों, झाड़ू देने वाले स्त्री या पुरुषों, धोबियों, नाइयों, मजदूरों, सिलावतों और खिदमतगारों आदि के द्वारा खबरें और भेद मुसलमानों को प्राप्त करने चाहिए।

६. सज्जादा नशीन अर्थात् दरगाह में काम करने वाले लोगों को मुसलमान बनाने का कार्य करें।

७. ताबीज और गंडे देने वाले जो हिन्दू उनके पास आते हैं, उनको इस्लाम की खूबियाँ बतावें और मुसलमान बनने की दावत दें।

८. देहाती मदरसों के अध्यापक अपने से पढ़ने वालों को और उनके माता- पिता को इस्लाम की खूविया बतावें और मुसलमान बनने की दावत दें।

९. नवाब रामपुर, टोंक, हैदराबाद, भोपाल, वहावलपुर और जूनागढ़ आदि को उनके ओहदेदारों, जमीदारों, नम्बरदार, जैलदार आदि को अपने यहाँ पर काम करने वालों को और उनके वच्चों को इस्लाम की खूबियाँ बतावें और मुसलमान बनने की दावत दें।

१०. माली, किसान, वागवान आदि को आलिम लोग इस्लाम के मसले सिखाएँ क्यूँकि साधारण और गरीव लोगों में दीन की सेवा करने का जोश अधिक रहता है।

११. दस्तगार जैसे सोने, चाँदी, लकड़ी, मिट्टी, कपड़े आदि का काम करने वालों को अलीम इस्लाम के मसलों से आगाह करें, जिससे वे औरों को इस्लाम ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करें।

१२. फेरी करने वाले घरों में जाकर इस्लाम की खूबियाँ बतायें, दुकानदार दुकान पर बैठे- बैठे सामान खरीदने वाले ग्राहक को इस्लाम की खूबियाँ बतायें।

१३. पटवारी, पोस्ट मास्टर, देहात में पुलिस ऑफिसर, डॉक्टर, मिल कारखानों में बड़े ओहदों पर काम करने वाले मुसलमान इस्लाम का बड़ा काम अपने नीचे काम करने वाले लोगों में इस्लाम का प्रचार कर सकते हैं।

१४. राजनैतिक लीडर, संपादक, कवि, लेखक आदि को इस्लाम की रक्षा एवं वृद्धि का काम अपने हाथ में लेना चाहिए।

१५. स्वांग करने वाले, मुजरा करने वाले, रण्डियों को, गाने वाले कव्वालों को, भीख माँगने वालों को सभी को इस्लाम की खूबियों को गाना चाहिये।

यहाँ पर सारांश में निज़ामी की पुस्तक के कुछ अंशों को लिखा गया है। पाठकों को भली प्रकार से निज़ामी के विचारों के दर्शन हो गये होंगे।

१९४७ के पहले यह सब कार्य जोरों पर था। हिन्दू समाज के विरोध करने पर दंगे भड़क जाते थे। अपनी राजनीतिक एकता, कांग्रेस की नीतियों और अंग्रेजों द्वारा प्रोत्साहन देने से दिनों-दिन हिन्दुओं की जनसंख्या कम होती गई, जिसका अंत पाकिस्तान के रूप में निकला।

अब पाठक यह सोचें कि आज भी यही सब गतिविधियाँ सुचारू रूप से चालू हैं। केवल मात्र स्वरूप बदल गया है। हिंदी फिल्मों के अभिनेता, क्रिकेटर आदि ने कव्वालों, गायकों आदि का स्थान ले लिया है और वे जब भी निजामुद्दीन की दरगाह पर माथा टेकते हैं, तो मीडिया में यह खवर ब्रेकिंग न्यूज बन जाती है। उनको देखकर हिन्दू समाज भी भेड़चाल चलते हुए उनके पीछे-पीछे अनुसरण करने लगता है।

देश भर में हिन्दू समाज द्वारा साईं संध्या को आयोजित किया जाता है, जिसमें अपने आपको सूफी गायक कहने वाला कव्वाल हमसर हयात निज़ामी बड़ी शान से बुलाया जाता है। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि कव्वाल हमसर हयात निज़ामी के दादा ख्वाजा हसन निज़ामी के कव्वाल थे और अपने हाकिम के लिए ठीक वैसा ही प्रचार इस्लाम का करते थे, जैसा निज़ामी की किताब में लिखा है। कहते हैं कि समझदार को ईशारा ही काफी होता है। यहाँ तो सप्रमाण निजामुद्दीन की दरगाह के हाकिम ख्वाजा हसन निज़ामी और उनकी पुस्तक दाइये इस्लाम पर प्रकाश डाला गया है।

हे प्रभो! हिन्दू समाज कब इतिहास और अपनी गलतियों से सीखेगा?

❑❑

www.thearyasamaj.org

पृष्ठ २ का शेष

ये दो अवतार द्वापर में हुए इस प्रकार कुल ९ अवतार हुए हैं। दसवां कलियुग में कल्कि अवतार होना है। सत्युग में चारों चरण धर्म रहता है। त्रेता युग में तीन चरण होता है। द्वापर में दो चरण होता है, तथा कलियुग में एक चरण धर्म शेष रह जाता है।

धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश करने के लिए भगवान का अवतार होता है। भगवान परम दयालु हैं। अपने भक्तों पर दया करके समय-समय पर शरीर धारण करते रहते हैं।

शास्त्रार्थ केशरी श्री पं० अमर सिंह जी

पण्डित जी महाराज! आपने बड़ी कृपा की जो एक वेद मन्त्र अपने पक्ष में समझ कर बोल दिया। मैं सर्वप्रथम उस मन्त्र पर ही विचार करता हूँ। क्योंकि -

अर्थकामेष्वसक्ताना, धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।

मनुस्मृति-अध्याय २ श्लोक १३,

जिनको सत्यासत्य के जानने की इच्छा है, उनके लिए वेद परम् प्रमाण है। ऐसा यह मनुस्मृति का वचन कहता है।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे" का अर्थ आपने यह किया कि (परमात्मा गर्भ में आता है।) श्रीमान जी परमेश्वर तो सर्वदेशी है। तथा सर्वव्यापक है। उसका आना-जाना कैसा? आना तो वहीं उसको होता है, जो जहाँ आने से पहले न हो। जो सब जगह मौजूद है, उसका आना क्या और जाना क्या? क्या गर्भ में परमात्मा पहले नहीं होता? जो कभी आता है। महाराज जी वेद ही में कहा है -

"तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः।"

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ५,

वह परमेश्वर इस सर्व जगत के भीतर है और बाहर (भी) है। वह गर्भ में भी बच्चे को भोजन देता है। उसको जीवित रखता और बढ़ाता है इसलिए कहा है कि -

"प्रजापतिश्चरति गर्भे"

प्रजापति परमात्मा गर्भ में भी कार्य करता है। आने कहा जन्म लेकर बहुत से प्रकार से प्रकट होता है। आपने जिस शब्द को "जायमान" समझा है। पण्डित जी महाराज ! वह 'अजायमान' है, और उसका अर्थ आपके आचार्य उब्बट और महीधर जी ने भी "अनुत्पद्यमान" न उत्पन्न होने वाला न जन्म लेने वाला, किया है। आप जन्म लेना उसका अर्थ कैसे करते हैं, इस मन्त्र में आगे कहा है।

"तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः"

अर्थात् उसके स्वरूप को बुद्धिमान लोग ही देखते हैं। शास्त्री जी, यदि परमात्मा शरीर धारण कर लेगा तो उसके उस रूप को तो मनुष्य-पशु-घोड़े सभी देख सकेंगे, केवल बुद्धिमान ही नहीं वह केवल बुद्धि का विषय न रहकर आँखों का विषय बन जायेगा, आँखों से तो पशु भी देखता है। और पशु का अर्थ भी केवल आँखों से देखने वाला कहा गया है।

"पश्यतीती पशुः"

जो आँखों से देखता है, बुद्धि से नहीं, वही पशु है।

"तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः" से शरीरधारी और साकार सिद्ध नहीं होता। इस मन्त्र से अवतारवाद का मण्डन नहीं होता। बल्कि खण्डन ही होता है, इसका अर्थ है कि बुद्धिमान लोग ही उस परमेश्वर के स्वरूप को देख सकते हैं, क्योंकि- वह बुद्धि से ही दीखता है आँखों से नहीं। आँखों से उसकी कारीगरी दीखती है।

उपनिषद में भी कहा गया है -

"दृश्यते त्वग्रया बुद्धया, सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः"

सूक्ष्म से सूक्ष्म देखने वालों के द्वारा बुद्धि से ही दीखता है, आँखों से नहीं, आपने अवतारों की संख्या और अवतारों के नाम बताकर शास्त्रार्थ का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

भगवान आपका भला करे।

शास्त्री जी !

जब सतयुग में चारों चरण धर्म रहता है, तब तो एक भी अवतार की आवश्यकता नहीं, फिर चार अवतारों का होना बुद्धिसंगत नहीं, आपकी युक्ति से तो, कलियुग में तीन, द्वापर में दो, त्रेता में एक, अवतार होता। सतयुग में एक भी नहीं होना चाहिये था, जब चारों चरण धर्म विद्यमान है, तब धर्म से ग्लानि हो ही नहीं सकती, परमेश्वर के अवतार उस समय व्यर्थ ही कूदते रहते हैं। और कलियुग में धर्म के तीन चरण टूट जाते हैं, तब एक अकेला अवतार आकर क्या करेगा?

www.thearyasamaj.org

महारानी पद्मिनी का जौहर

(सौरभ कुमार, नया बांस, दिल्ली)

प्रिय पाठकवृन्द! पूर्व की भाँति एक बार फिर फिल्म वालों ने हिन्दुओं के स्वाभिमान को आहत कर दिया। शोर मचा कि बनाई जा रही फिल्म 'पद्मावती' में रानी पद्मावती (पद्मिनी) के प्रति अलाउद्दीन खिलजी की दीवानगी को प्रस्तुत किया जा रहा है और एक सपने के दृश्य में अलाउद्दीन को रानी के साथ आपत्तिजनक अवस्था में दिखाया जा रहा है। राजस्थान के स्वाभिमानी देशभक्तों ने जयपुर में फिल्म-निर्देशन का जोरदार विरोध किया। तीन-चार दिन के विरोध के बाद फिल्म निर्देशक संजय लीला भंसाली ने कहा कि फिल्म में ऐसे रोमांटिक सीन की कोई जगह नहीं होगी। पर तथाकथित सेकुलर अपनी पुरानी आदत के अनुसार इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रहार व असहिष्णुता बताते हुए चिल्लाने लगे। एक लेखक ने तो पंजाब केसरी (फरवरी २०१७) में यहाँ तक लिख दिया कि वैसे इस (रानी पद्मिनी के) जौहर को कविता का जामा कथित रूप में २०० वर्ष से भी अधिक समय बाद पहनाया गया था। कोई भी ऐसा समकालीन साक्ष्य नहीं मिलता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि सचमुच में जौहर जैसी घटना हुई थी।

यह ठीक है कि रानी पद्मिनी के जौहर व अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण से सम्बन्धित इतिहास में कई छोटी-छोटी कल्पनाएँ भी जुड़ गयी हैं, पर अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण का कारण रानी पद्मिनी को न मानने वाले इतिहासकारों ने भी जौहर की घटना से मना नहीं किया है। ऐसे ही इतिहासकार डॉ० लाल को उद्धृत करते हुए डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है- "कहानी के परम्परागत वर्णन को ताक पर रखने के पश्चात् नग्न सत्य यह है कि सुल्तान अलाउद्दीन ने १३०३ ई० में चित्तौड़ पर आक्रमण किया और आठ माह के विकट संघर्ष के पश्चात् उसे अधिकृत कर लिया। और वीर राजपूत स्त्रियाँ जौहर की ज्वालाओं में समाधिस्थ हो गयीं। जो स्त्रियाँ समाधिस्थ हुई, उनमें सम्भवतः रत्नसिंह की एक रानी भी थी, जिसका नाम पद्मिनी था। इन तथ्यों के अतिरिक्त और सब कुछ एक साहित्यिक संरचना है और उसके लिए ऐतिहासिक समर्थन नहीं।"

रानी पद्मिनी के इतिहास को झूठा बताते हुए जो तर्क मुख्यतः दिया जाता है कि चित्तौड़ आक्रमण के समय अलाउद्दीन के साथ रहे अमीर खुसरो ने पद्मिनी का वर्णन नहीं किया। इसका खण्डन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि केवल इसी से रानी पद्मिनी का इतिहास काल्पनिक नहीं हो सकता, क्योंकि खुसरो ने 'खजाएँ-उल-फतूह' में इस घटना की ओर संकेत अवश्य किया है- वह अलाउद्दीन की सुलेमान से तुलना करता है, सैबा को चित्तौड़ किले के भीतर बताता है और अपनी उपमा उस हुदहुद पक्षी से देता है, जिसने यूथोपिया के राजा सुलेमान को सैबा की सुन्दर रानी विलाकिस का समाचार दिया था। क्योंकि खुशरव (खुसरो) अलाउद्दीन का दरबारी कवि था। इसलिए उसने जो कुछ लिखा है, उससे अधिक लिखना उसके लिए असम्भव था। जैसा कि हमें विदित है कि उसने अनेक अप्रिय सत्यों का उल्लेख नहीं किया है, जिनमें अलाउद्दीन द्वारा अपने चाचा जलालुद्दीन का वध, मंगोलों के हाथों सुल्तान (अलाउद्दीन) की पराजय तथा उनके द्वारा दिल्ली का घेरा इत्यादि प्रमुख हैं।"

"यह ठीक है कि जायसी ने अपने प्रेम-काव्य 'पद्मावत' की रचना घटना के लगभग २४० वर्ष बाद

www.thearyasamaj.org

(१५४० ई० में) की, पर यह भी सत्य है कि उसने 'पद्मावत' का कथानक खुशरव के 'खजाएँ उल फतूह' से लिया है। 'पद्मावत' में वर्णित प्रेम कहानी के ब्यौरे की अनेक घटनाएँ कल्पित हैं, किन्तु काव्य का मुख्य कथानक सत्य प्रतीत होता है। अलाउद्दीन पद्मिनी को प्राप्त करने का इच्छुक था और उसके पति को बन्दी बना लिया था, ये घटनाएँ सम्भवतः ऐतिहासिक सत्य पर आधारित हैं।" (दिल्ली सल्तनत, पृ० १५६-१५७)

'राजस्थान का इतिहास' में इतिहासकार डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है- "हमारे विचार से यह मानना कि पद्मिनी की कथा परम्परा जायसी के 'पद्मावत' से आरम्भ होती है, वह सर्वथा भ्रम है। छिताइचरित में, जो जायसी से कई वर्षों पूर्व लिखा गया था, पद्मिनी तथा अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण का वर्णन है। हेमरतन का गोरा- बादल चौपाई में तथा लब्धोदय के पद्मिनी चरित्र में इस कथा को स्वतंत्र रूप से लिखा गया है। फरिश्ता और अबुल फजल ने जिस कथा को छानबीन के साथ लिखा है, उसको निरा काल्पनिक नहीं ठहराया जा सकता।... हो सकता है कि कई बातें पाठभेद से तथा वर्णन शैली से विभिन्न रूप में प्रचलित रही हों, किन्तु उनका आधार सत्य से हटकर नहीं ढूँढा जा सकता। स्थापत्य इस बात का साक्षी है कि चित्तौड़ में पद्मिनी के महल हैं और पद्मिनी ताल है, जो आज भी उस विस्तृत तथा विवादग्रस्त महिला की याद दिला रहे हैं। पद्मिनी के सम्बन्ध में दी गयी सभी घटनाएँ सम्भवतः सत्य की कसौटी पर ठीक नहीं उतरें, किन्तु पद्मिनी की विद्यमानता, आक्रमण के समय उसकी सूझबूझ, उसके द्वारा जौहरव्रत का नेतृत्व आदि घटनाओं का एक स्वतंत्र महत्व है।.... इसी प्रकार गोरा-बादल की वीरता और सूझबूझ पर सन्देह करने की कम गुंजाइश रह जाती है, जबकि हम उनके नाम से सम्बन्धित महल और छत्रियों को आज भी खंडहर के रूप में पाते हैं। .... इस (प्रथम शाके) की कहानी के अन्तर्गत महारानी पद्मिनी का त्याग और जौहरव्रत हमारी महिलाओं को नयी प्रेरणा देता है। आज गोरा-वादल या पद्मिनी नहीं है, परन्तु उनके आत्मबल और देश-सेवा के आदर्श जीवित हैं। जब तक देश-सेवा, वीरता, शौर्य और त्याग की चर्चा संसार में होती रहेगी, इन वीरों का नाम जरूर लिया जायेगा।.... इन वीरों का ओजस्वी वृतान्त हमें यह सिखाता है कि जब देश पर आपत्ति आये, तो प्रत्येक व्यक्ति को अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देश-सेवा में लग जाना चाहिए।" (राजस्थान का इतिहास १७२-७५)

यह ठीक है कि अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण करने का मुख्य कारण राजनीतिक था, परन्तु चित्तौड़ से निष्कासित होकर दिल्ली में सम्मानित हुए राघव चेतन के मुख से चित्तौड़ की रानी पद्मिनी की सुन्दरता के विषय में सुनकर उसे पाने की उत्कंठा भी चित्तौड़ आक्रमण का कारण बनी। इस सत्य को नकारने वालों को अलाउद्दीन खिलजी के जीवन की अन्य घटनाओं पर भी चिन्तन करना चाहिए-

१२९७ ई० में अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने गुजरात पर आक्रमण किया, तो राजा कर्ण देव अपनी राजधानी अन्हिलवाड़ (पाटन) को छोड़कर अपनी पुत्री देवलदेवी के साथ भाग निकला और देवगिरि के राजा रामचन्द्रदेव की शरण में चला गया। तब खिलजी की सेना ने अन्हिलवाड़ को जीत लिया और लूट लिया। राजा कर्णदेव की रानी कमलादेवी पहले ही उनके हाथ लग गई थी, जिसे खिलजी के हरम में दिल्ली भेज दिया गया।

१३०६ ई० के अन्त में अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरि पर आक्रमण करने सल्तनत के नाइब मलिक काफूर के नेतृत्व मे सेना भेजी। यद्यपि अपने चाचा जलालुद्दीन के काल (१२९४ ई०) में अलाउद्दीन देवगिरि को जीत चुका था, पर कई वर्ष से राजा रामचन्द्रदेव ने राजस्व नहीं

www.thearyasamaj.org

भेजा था और कर्ण देव को शरण देने का अपराध भी उसने किया था। बस, खिलजी को बहाना मिल गया देवगिरि पर आक्रमण करने का और मलिक काफूर को आज्ञा दी गई कि वह कर्णदेव की पुत्री देवल देवी को दिल्ली ले आए। कर्णदेव अब बगलाना के छोटे से राज्य का स्वामी बन बैठा था। उसने अपनी पुत्री देवल देवी का विवाह अपने शरण दाता रामचन्द्रदेव के बड़े पुत्र शंकरदेव के साथ करने का प्रबन्ध कर लिया था। जिस समय लोग देवल देवी को देवगिरी की ओर ले जा रहे थे, तो मार्ग में वह मलिक काफूर की सहायता करने आ रहे गुजरात के गवर्नर (अलाउद्दीन खिलजी का साला) अलपखाँ के हाथों पड़ गई। देवल देवी को दिल्ली भेज दिया गया, जहाँ अलाउद्दीन के सबसे बड़े बेटे खिज्रखाँ के हरम में डाल दी गई।

यह वही अभागिनी देवल देवी थी, जिसके पति खिज्र खाँ को अलाउद्दीन ने कैद में डाला था; मलिक काफूर ने अन्धा किया था व अलाउद्दीन के छोटे बेटे मुबारक ने उसकी हत्या कर देवल देवी अपने हरम में डाली थी (१३१६ ई०)। कुछ ही वर्ष बाद (१३२० ई०) मुबारक की हत्या कर खुसरो (गुप्त हिन्दू) ने भी देवल देवी से विवाह किया था, पर मात्र ५ मास बाद ही ग्यासुद्दीन तुगलक ने खुसरो की भी हत्या कर दी।

अलाउद्दीन की चित्तौड़-चढ़ाई से तत्काल पूर्व की (रणथम्भौर विजय की) घटना को भी देख लेना चाहिए- रणथम्भौर में पृथ्वीराज चौहान के वंशज वीर हम्मीर देव ने अलाउद्दीन के विद्रोही मंगोलों को शरण दे रखी थी। खिलजी के कहने पर भी हम्मीर ने शरणागतों का त्याग नहीं किया, तो १२९९ ई० में खिलजी ने आक्रमण के लिए सेना भेजी पर वह हार गई। खिलजी स्वयं आया और वर्ष भर के घेरे के बाद भी विजय नहीं मिली। तो रतिपात व रणमल का लालच देकर अपने पक्ष में कर लिया। उनके देशद्रोह के कारण अपने राजपूत वीरों के साथ वीर हम्मीर वीरगति को प्राप्त हुए और महारानी रंगदेवी, राजकुमारी देवल देवी तथा अन्य रानियों ने जौहर की अग्नि में छलांग लगाकर अपने धर्म की रक्षा की।

१२ जुलाई १३०१ ई० का सम्भवतः यह प्रथम जौहर था। हो सकता है गुजरात की रानी कमला देवी की दुर्दशा (खिलजी के हरम में भेजा जाना) जैसी आशंका में यह कदम उठाया गया हो।

आगे-पीछे की इन घटनाओं को देखते हुए क्या यह सम्भव नहीं लगता कि रणथम्भौर जैसे अजेय किले को जीतकर घमण्ड में भरे अलाउद्दीन ने कुछ मास पूर्व ही चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे रावल समरसिंह (१२७३-१३०२ ई.) के पुत्र रतनसिंह को पत्र लिखा हो कि अपनी रानी पद्मिनी को उसके हरम (दिल्ली) में भेज दे?

यदि हम अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के कारणों में से रानी पद्मिनी को हटा भी दें, तो यह निश्चित रूप से मानना पड़ेगा कि चित्तौड़ की इस रानी के सामने गुजरात व रणथम्भौर में खिलजी द्वारा खेले गये खूनी खेल का इतिहास अवश्य रहा होगा। यदि सम्पूर्ण विनाश उपस्थित होने पर धर्म (सतीत्व) रक्षा के लिए अन्य महिलाओं के साथ रानी पद्मिनी ने रणथम्भौर की महारानी रंगदेवी का अनुकरण कर जौहर व्रत (अग्नि समाधि) किया हो, तो इसमें असम्भव क्या है? क्यों देश-विरोधी (तथाकथित सेकुलर) लोग हिन्दुओं के गौरवशाली इतिहास पर बार-बार प्रश्न चिह्न लगा देते हैं? कामरेड का बिल्ला लगाने वाले कुछ लोग कहते हैं कि यदि रानी पद्मिनी ने जौहर किया, तो इसमें क्या वीरता थी? अच्छा होता, यदि वह भी तलवार उठाकर शत्रु को मारती। भगतसिंह के नामलेवा ये लोग भूल जाते हैं कि भगतसिंह ने भारत के युवाओं में क्रांति भावना जगाने के लिए स्वयं मृत्यु का वरण किया था, अन्यथा वे भाग भी सकते थे। सम्भवतः जीवित रहकर वे वह कार्य न कर पाते, जो फाँसी चढ़कर किया।

❑❑

www.thearyasamaj.org

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/४/२०१७
भार- ४० ग्राम

अप्रैल 2017

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

– दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा० .....
जिला.....

छपी पुस्तक/पत्रिका

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।